अध्याय 4
विश्व का इतिहास

यूरोप में राष्ट्रवाद का उदय

राष्ट्रवाद एक ऐसी भावना है, जिसमें व्यक्ति की उच्चतम निष्ठा राष्ट्र के प्रति समर्पित होती है। स्वतन्त्रता की इच्छा और राष्ट्र बनने की सशक्त अभिव्यक्ति अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम में देखी जा सकती है। राज्य (नेशन स्टेट) की यूरोप में पहली स्पष्ट अभिव्यक्ति 1789 में फ्रांसीसी क्रांति के साथ हुई। इस क्रांति ने ही राष्ट्रवाद को यूरोप में प्रसारित करने में मुख्य भूमिका निभाई।

अट्ठारहवीं सदी के मध्य यूरोप के मानचित्र को देखते हैं तो उमसें "राष्ट्र–राज्य" नहीं मिलता है। यूरोप विभिन्न राजशाहियों, डचियों और कैटंनों (Cantons) तथा छोटी–छोटी राजनैतिक इकाइयों में विभक्त था जो मजहबी आधार लिए हुई थी तथा जिनके शासकों के स्वायत्त क्षेत्र थे। पूर्वी और मध्य यूरोप निरंकुश राजतंत्र के अधीन था और इन क्षेत्रों में तरह–तरह के लोग रहते थे। वे अपने आपको एक सामूहिक पहचान या किसी समान संस्कृति का भागीदार नहीं मानते थे। वे अलग–अलग भाषाएँ बोलते थे और विभिन्न नस्लीय समूह के सदस्य थे। जैसे– हैब्सवर्ग साम्राज्य में कुलीन वर्ग में जर्मन भाषा बोलने वाले ज्यादा थे तो लॉम्बार्डी और वेनेशिया में इतावली भाषा तथा हंगरी में आधे लोग मैग्यार भाषा बोलते थे जबकि बाकी लोग विभिन्न बोलियों का इस्तेमाल करते थे। गलीसिया में कुलीन वर्ग पोलिस भाषा बोलता था। ऐसा फर्क राजनीतिक एकता को आसानी से बढ़ावा देने वाला नहीं था। इन तरह–तरह के समूहों को आपस में बाँधने वाला तत्त्व, केवल सम्राट के प्रति सबकी निष्ठा थी।

यूरोप में राष्ट्रवाद के कारण :–

1. मध्यम वर्ग का उदय :–

यूरोप में सामाजिक और राजनीतिक रूप से जमीन का मालिक कुलीन वर्ग सबसे प्रभुत्वशाली वर्ग था। यह वर्ग जनसंख्या के लिहाज से एक छोटा समूह था, जबकि यूरोप की अधिकांश जनसंख्या कृषक थी। पश्चिम यूरोप में ज्यादातर जमीन पर किरायेदार और छोटे कास्तकार खेती करते थे जबकि पूर्व और मध्य यूरोप में भूमि विशाल जागीरों में बँटी थी जिस पर भू–दास खेती करते थे।

पश्चिम और मध्य यूरोप में औद्योगिक उत्पादन और व्यापार में वृद्धि से शहरों का विकास और वाणिज्यिक वर्गों के उदय से एक नया सामाजिक समूह अस्तित्व में आया। जिसमें श्रमिक वर्ग के लोग, मध्यम वर्ग जो उद्योगपतियों, व्यापारियों और सेवा क्षेत्र के लोगों से बना था। इन वर्गों में कुलीन विशेष अधिकारों की समाप्ति के बाद राष्ट्रीय एकता के विचार अधिक लोकप्रिय हुए।

2. उदारवादी राष्ट्रवाद :–

यूरोप में राष्ट्रीयता की भावना का पोषण उदारवाद एवं प्रजातन्त्र ने किया। सामान्यतः उदारवाद का अर्थ मर्यादित स्वतन्त्रता और समानता से है। उदारवाद का लक्ष्य अधिकांश क्षेत्रों को नियंत्रण से मुक्त करना था। उदारवादी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताएँ, जैसे भाषण, लेखन, सभा–संगठन तथा निजी सम्पत्ति की सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहते थे। राजनीतिक रूप से उदारवाद एक ऐसी सरकार पर जोर देता था जो सहमति से बनी हो।

आर्थिक क्षेत्र में उदारवाद, बाजारों की मुक्ति और चीजों तथा पूँजी के आवागमन पर राज्य द्वारा लगाये गये नियंत्रणों को खत्म करने की मध्य वर्गों की जोरदार माँग से सम्बन्धित था। सदी के पहले भाग में जर्मन–भाषी इलाकों को नेपोलियन के प्रशासनिक कदमों से अनगिनत छोटे–छोटे प्रदेशों से 39 राज्यों का एक महासंघ बना। इसमें प्रत्येक राज्य की अपनी मुद्रा और नाप तोल प्रणाली थी। 1833 में हैम्बर्ग से न्यूरेम्बर्ग जाकर अपना माल बेचने वाले एक व्यापारी को ग्यारह सीमा शुल्कों से गुजरना पड़ता था। नया वाणिज्य वर्ग ऐसी परिस्थितियों को आर्थिक विनिमय और विकास में बाधक मानते हुए एक ऐसी एकीकृत आर्थिक क्षेत्र के निर्माण के पक्ष में तर्क दे रहा था जहाँ वस्तुओं, लोगों और पूँजी का आवागमन बाधा रहित हो। ऐसे आर्थिक क्षेत्र का निर्माण 1834 ई0

में प्रशा की पहल पर एक शुल्क संघ जॉलवेराइन के रूप में स्थापित किया गया जिसमें अधिकांश जर्मन राज्य सम्मिलित हो गये। इस संघ ने शुल्क अवरोध को समाप्त कर दिया और मुद्राओं की संख्या दो कर दी जो पहले तीस से ऊपर थी। इस संघ ने आर्थिक हितों को राष्ट्रीय एकीकरण का सहायक बनाया उस समय पनप रही व्यापक राष्ट्रवादी भावनाओं को आर्थिक राष्ट्रवाद की लहर ने मजबूत किया।

3. इंग्लैण्ड और फ्राँस की क्रांति :—

इंग्लैण्ड की शानदार गौरवपूर्ण क्रांति ने इस मान्यता को जन्म दिया कि किसी भी प्रकार के शासनतंत्र में दैवीय अधिकार का कोई औचित्य नहीं है। इसी क्रम में फ्राँस की क्रांति ने इस धारणा को जन्म दिया, कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता इतनी पावन है कि कोई भी सत्ता उसकी अवहेलना नहीं कर सकती। यह संकल्पना राष्ट्रीयता की जीत थी। राष्ट्रीयता उस राजतंत्रीय शक्ति के प्रत्युत्तर के रूप में जन्मी जिसका यह दावा था कि दैवीय अधिकारों के आधार पर राजा की शक्ति निरंकुश होती है।

4. 1815 ई. के बाद एक नया रूढ़िवाद :—

1815 ई. में ब्रिटेन, रूस, और आस्ट्रिया जैसी यूरोपीय शक्तियों, जिन्होंने मिलकर नेपोलियन को हराया था, इन देशों के प्रतिनिधि यूरोप के लिए एक समझौता तैयार करने के लिए वियना में मिले। वियना कांग्रेस में एकत्रित राजनीतिज्ञों ने अपनी समझ एवं अनुभव के आधार पर यूरोप का पुनर्निर्माण, पुरातन व्यवस्था को प्रतिष्ठित कर उन्नीसवीं शताब्दी के नये युग के लक्षण—राष्ट्रीयता, उदारवाद एवं लोकतन्त्रीय भावनाओं से यूरोप को दूर रखने की अपनी प्रतिज्ञा को दुहराया था, किन्तु उन्होंने अंकुरित बीजों को पहचाना नहीं था। यही कारण है कि जिन व्यवस्थाओं को स्थापित करने की कोशिश वियना कांग्रेस ने की थी अगले एक सौ वर्ष तक वे ध्वस्त होती रही।

5. क्रांतिकारी :—

1815 ई. के बाद के वर्षों में दमन और भय से अनेक उदारवादी—राष्ट्रवादी भूमिगत हो गये। बहुत सारे यूरोपीय राज्यों में क्रांतिकारियों को प्रशिक्षण देने और विचारों का प्रसार करने के लिए गुप्त संगठन बनाये गये। क्रांतिकारी होने का मतलब उन राजतंत्रीय व्यवस्थाओं का विरोध करने से था, जो वियना कांग्रेस के बाद स्थापित की गई थी साथ ही स्वतन्त्रता और मुक्ति के लिए प्रतिबद्ध होना और संघर्ष करना क्रांतिकारी होने के लिए जरूरी था। ज्यादातर क्रांतिकारी राष्ट्र—राज्यों की स्थापना को आजादी के इस संघर्ष का अनिवार्य हिस्सा मानते हैं।

6. भाषा और लोककथाओं का योगदान :—

राष्ट्रवाद का विकास केवल युद्धों और क्षेत्रीय विस्तार से नहीं हुआ। कला, काव्य, कहानियों—किस्सों और संगीत ने राष्ट्रवादी भावनाओं को गढने और व्यक्त करने में सहयोग दिया। स्थानीय बोलियों व स्थानीय लोक साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय संदेश को ज्यादा लोगों तक पहुँचाना तथा राष्ट्रीय भावना को जीवित रखा गया। भाषा ने भी राष्ट्रीय भावनाओं के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। रूसी कब्जे के बाद पोलिस भाषा को स्कूलों से बलपूर्वक हटा कर रूसी भाषा को हर जगह जबरन लादा गया। 1831 ई. के रूस के विरूद्ध एक सशस्त्र विद्रोह हुआ जिसे आखिरकार कुचल दिया गया। इसके अनेक सदस्यों ने विरोध के लिए भाषा को हथियार बनाया। चर्च के आयोजनों और सम्पूर्ण धार्मिक शिक्षा में पोलिस का इस्तेमाल हुआ। पोलिस भाषा रूसी प्रभुत्व के विरूद्ध संघर्ष के प्रतीक रूप में देखी जाने लगी।

औद्योगिक क्रान्ति :—

मानव सभ्यता के आरम्भ से उन्नसवीं सदी पूर्व तक दुनिया का सारा काम—काज सामान्यतया हस्त चलित औजारों के द्वारा ही किया जाता था। मानव ने ऊर्जा के कई नये स्रोतों की खोज की और इनके उपयोग से उसकी कार्य—शक्ति की कोई सीमा नहीं रही। वाष्प—शक्ति, विद्युत—ज्वलन, गैस आदि क्षेत्र में मानव के बढ़ते चरण थे, जिसकी परिणति अणु ऊर्जा के अविष्कार में हुई।

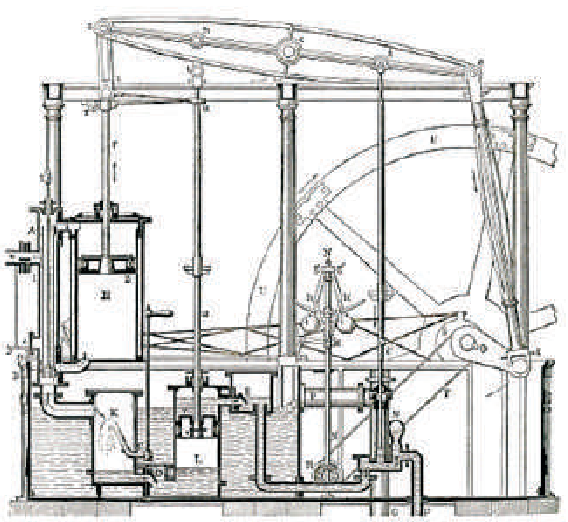

औद्योगिक मशीन

दुनिया में भारत कुटीर उद्योगों से सम्पन्न ऐसा देश है जहां अति प्राचीन काल में भी लोह भट्टियों से उच्च स्तर का इस्पात तैयार होता था। इसका ज्वलंत उदाहरण दिल्ली का 'लौह

स्तम्भ' बिना जंग लगे खड़ा है। कृषि की उन्नत किस्में एवं बदलकर तथा मिश्रित कृषि भारत की ही देन है। बांध एवं सेतु निर्माण भारत की दुनिया को दिशा देने वाली एवं उद्योगों को आधारभूत ढ़ांचा उपलब्ध कराने में अग्रणी भूमिका है। हजारों वर्ष पूर्व श्रीलंका एवं भारत के बीच बनाया गया 'रामसेतु' उदाहरण है, जिसके निर्माण की विधि भी हमारे शास्त्रों में विद्यमान है। वर्तमान में 19वीं शताब्दी से पूर्व कृषि उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य की उत्तम व्यवस्था भारत में वर्षों पूर्व विद्यमान रही है, जबकि दुनिया में तथाकथित हजारों विकसित राष्ट्रों द्वारा 19 वीं सदी से नये प्रयोग प्रारम्भ किये हैं।

औद्योगिक क्रांति का अर्थ :–

औद्योगिक क्राति का तात्पर्य उत्पादन–प्रणाली में हुए उन आधारभूत परिवर्तनों से हैं, जिनके फलस्वरूप जन संसाधनों को अपने परम्परागत कृषि, व्यवसाय एवं घरेलू उद्योग–धंधों को छोडकर नये प्रकार के वृहत् उद्योगों में काम करने तथा यातायात के नवीन साधनों के प्रयोग का अवसर मिला। औद्योगिक क्रांति शब्द का प्रयोग यूरोपीय विद्वानों में फ्रांस के जार्जिस मिशले और जर्मनी काईड्रिक एंजेम द्वारा किया गया। अर्नोल्ड टॉयनवी ने अपनी पुस्तक "लेक्चर्स ऑन इण्डस्ट्रियल रिवोल्यूशन" में यह स्पष्ट किया है कि औद्योगिक क्रान्ति कोई आकस्मिक घटना नहीं है, वरन् विकास की सतत प्रक्रिया है। इतिहासकार "जी.डब्लू साउथ गेट" के अनुसार औद्योगिक क्रान्ति, औद्योगिक प्रणाली में परिवर्तन था जिसमें हस्तशिल्प के स्थान पर शक्ति संचालित यंत्रों से काम लिया जाने लगा तथा औद्योगिक संगठन में परिवर्तन हुआ। घरों में उद्योग चलाने की अपेक्षा कारखानों में काम होने लगा। इतिहासकार सी. डी.हेजन का मत है कि कुटीर उद्योग का मशीनीकरण औद्योगिक क्रांति है। डेविज के अनुसार औद्योगिक क्रांति का तात्पर्य उन परिवर्तनों से है जिन्होंने यह संभव कर दिया था कि मनुष्य उत्पादन के प्राचीन उपायों को त्याग कर विस्तृत रूप से कारखानों में वस्तुओं का उत्पादन कर सकें। एन्साइक्लोपीडिया आफ साइसेंज खण्ड आठ के अनुसार आर्थिक और तकनीकी विकास जो अठारहवीं शताब्दी में अधिक सशक्त और तीव्र हो गया था, जिसके फलस्वरूप आधुनिक उद्योगवाद का जन्म हुआ, जिसे औद्योगिक क्रांति कहा जाता है।

हम यह कह सकते हैं कि औद्योगिक क्रांति का अर्थ उस आर्थिक व्यवस्था से है, जो परम्परागत कम उत्पादन और विकास की निम्न अवस्था से निकलकर आधुनिक औद्योगिक क्षेत्र में प्रविष्ठ होती है जिससे अधिक उत्पादन, जीवन का रहन–सहन और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है और उत्पादन दर निरन्तर बढ़ती रहती है, जिसका मनुष्य, समाज और राज्य पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

औद्योगिक क्रांति से होने वाले परिवर्तन :–

1. उत्पादन के लिए जो कार्य पहले हाथ से किये जाते थे वे अब शक्ति चालित यंत्रों से किये जाने लगे।
2. इस्पात की बढती माँग की पूर्ति के लिए इस्पात बनाने के कारखाने खोले जाने लगे।
3. कृषि कार्यो में शक्ति चालित मशीनों का प्रयोग होने के कारण छोटे–छोटे खेतों के स्थान पर बड़े–बड़े फार्मों में खेती की जाने लगी।
4. पूंजी का उपयोग बढने के कारण बैंकिग पद्धति का विकास हुआ।
5. वाष्प चालित इंजन और यन्त्रचालित जहाजों के कारण यातायात में आमूल चूल परिवर्तन हो गया।
6. अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि हेतु संगठित व्यापार तंत्र विकसित किया गया।
7. कम मानव श्रम एवं अधिकतम उत्पादन के सिद्वान्त को अपनाया गया।

औद्योगिक क्रान्ति इंग्लैण्ड से प्रारम्भ क्यों हुई ?

इंग्लैण्ड पहला देश था जहाँ सबसे पहले आधुनिक औद्योगिकीकरण का अनुभव किया गया। इंग्लैण्ड में यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा अनेक ऐसी परिस्थितियां थी, जिन्होंने औद्योगिक क्रांति को इंग्लैण्ड में सबसे पहले प्रारम्भ किया।

1. इंग्लैण्ड का विस्तृत औपनिवेशिक साम्राज्यः– इंग्लैण्ड में अट्ठारवीं सदी के औपनिवेशिक साम्राज्य से कच्चा माल व नवीन बाजार उपलब्ध हुए। जबकि यूरोप के अन्य देशों के पास उपनिवेश नहीं थे।

2. लोहे और कोयले की खानें पास–पास होनाः– इंग्लैण्ड में लोहे और कोयले की खानें पास–पास होने के कारण पक्का लोहा निर्माण में अधिक सुविधा हुई। मशीनों के निर्माण के लिये पक्का लोहा आवश्यक था।

3. उपभोग के अनुरूप उत्पादनः– फ्रांस का निर्यात– व्यापार उच्च–कोटि की विलासी वस्तुओं का था। विलासी वस्तुओं का उपभोग हमेशा सीमित रहता है जबकि इंग्लैण्ड का निर्यात–व्यापार उन वस्तुओं का था जिनकी जरूरत बड़ी मात्रा में रहती थी। इंग्लैण्ड का विश्वास था कि यदि उन्हें और अधिक सस्ता बनाने के साधन खोजे जाये तो उनका बाजार और बढ़ सकता है। इसलिए इंग्लैण्ड उन तरीकों को अपनाने के लिए तैयार था, जिनसे वस्तुओं

का बडी मात्रा में उत्पादन संभव हो सके।

4. अर्द्धकुशल कारीगरों की उपलब्धता:– जब इंग्लैण्ड में सामन्ती व्यवस्था भंग हुई तो बड़ी संख्या में अर्द्ध–कुशल कारीगर शहरों में जा बसे। जैसे ही औद्योगिक क्रांति हुई, तब ये अर्द्ध–कुशल कारीगर नई मशीनों पर काम करने के लिए उपलब्ध हो गये।

5. फ्रांसीसी क्रांति एवं युद्ध:– फ्रांसीसी क्रांति एवं नेपोलियन के युद्धों ने इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के विकास में महत्व पूर्ण योगदान दिया। युद्ध के दिनों में इंग्लैण्ड को अपने सैनिकों व अपने साथी देशों के सैनिकों को आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन के तरीकों में सुधार करने की आवश्यकता पड़ी।

6. पूंजी की उपलब्धता:– यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा इंग्लैण्ड के पास बडे–बडे कारखाने लगाने के लिए पूंजी उपलब्ध थी। तात्कालिक परिस्थितियाँ पूंजी संग्रह तथा उसके उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए अनुकूल थी। अट्ठारवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड में उद्योगपतियों को ऋण प्राप्त करने तथा पूंजी जमा करने की सुविधा मिल गई।

7. इंग्लैण्ड की अनुकूल भौगोलिक स्थिति:– व्यापारिक दृष्टि से इंग्लैण्ड की भौगोलिक स्थिति अच्छी थी। इंग्लैण्ड के चारों ओर समुद्री सीमा होने से बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित होने के कारण वह युद्ध जनित हानियों से बचा रहा और अपना औद्योगिक विकास कर सका।

8. इंग्लैण्ड में हुई कृषि क्रांति ने भी औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित किया।

9. वैज्ञानिक आविष्कारों को प्रोत्साहन:– इंग्लैण्ड यूरोप के अन्य देशों की अपेक्षा वैज्ञानिकों को राजनीति एवं मजहबी हस्तक्षेप से अधिक मुक्त रखता था तथा वैज्ञानिक संस्थाओं को अधिक प्रोत्साहन देता था। जिससे इंग्लैण्ड में वैज्ञानिक आविष्कार अधिक हुए।

औद्योगिक क्रान्ति के समय विभिन्न क्षेत्रों में हुए आविष्कार एवं सुधार :–

कृषि क्षेत्र :– औद्योगिक क्रान्ति के समय सबसे पहले कृषि के क्षेत्र में सुधार हुए। यह माना जाता है कि कृषि के बिना औद्योगिक क्रांति सम्भव नहीं थी। सत्रहवीं शताब्दी तक कृषि क्षेत्र में सामान्यतः वही विधियाँ और उपकरण प्रयोग में लाये जाते थे, जो कई शताब्दियों से प्रयोग में लाये जा रहे थे। कृषि तकनीक में परिवर्तन नहीं होने के कारण कृषि जन्य वस्तुओं की माँग राज्य की खपत से अधिक नहीं थी। लेकिन जब कारखाना प्रणाली का विस्तार हुआ, शहरों की आबादी बढ़ी तो अधिक अन्न और कारखानों के लिए अधिक कपास की माँग बढी। अतः कृषि जन्य वस्तुओं की माँग की पूर्ति के लिए कृषि के क्षेत्र में वैज्ञानिक तरीकों से काम करने और कृषि उपयोगी मशीनों को बनाने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

दूसरा कारण अब लोग मुनाफे के लिए खेती में पूँजी लगा रहे थे वास्तव में कृषि क्षेत्र में पूंजी के प्रयोग ने कृषि में क्रांति ला दी। सर्वप्रथम यार्कशायर के जमींदार "जेथ्रोटल" ने बीज बोने की मशीन सीड ड्रिल बनाई। जिससे बीज बोने का कार्य अधिक व्यवस्थित तथा सुचारू रूप से होने लगा। एक अंग्रेज जमींदार टाउनशैण्ड ने फसलचक्र का सिद्वान्त दिया, जिसमें फसलों को अदल–बदल कर बोने से भूमि की उर्वरा शक्ति बनाई रखी जा सकती थी। अब परती छोड़ने की आवश्यकता नहीं थी, तथा प्रति एकड फसल उत्पादन अधिक हो गया। 1770 ई. के आस पास राबर्ट बेक बैल ने कृषि के साथ–साथ पशुपालन को एक लाभदायक व्यवसाय बना दिया। उसने भेड़ों और गायों की नस्ल सुधारने के लिए प्रयोग प्रारम्भ किये। वैज्ञानिक प्रजनन पद्धति के नवीन प्रयोग से उसने पहले की अपेक्षा तिगुनी वजन की भेड़ें तैयार करने में सफलता प्राप्त की। 1793 ई. में अमेरिकी निवासी व्हिटन ने अनाज को भूसे से अलग करने की मशीन तथा 1834 में साइरस के एच. मैककोरमिक ने फसल काटने वाली मशीन का आविष्कार किया। कालान्तर में कृषि में यन्त्रीकरण बढता चला गया। शक्ति से चलने वाली मशीनों के आविष्कारों ने कृषि में क्रान्ति ला दी।

वस्त्र उद्योग में नये आविष्कार :–

औद्योगिक क्रांति की शुरुआत मुख्यतः वस्त्र उद्योग से हुई। 18 वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप के उद्योग में वस्त्र बनाने की प्राचीन प्रणाली वस्त्रों की माँग को पूरा करने में असमर्थ थी। इंग्लैण्ड में पहले सूती वस्त्र भारत से आयात किये जाते थे लेकिन जब ईस्ट इंडिया कम्पनी का राजनीतिक नियत्रंण भारत पर हो गया तब इंग्लैण्ड ने कपड़े के साथ–साथ कपास का आयात करना भी प्रारम्भ कर दिया। यूरोप में बढ़ती कपड़ों की माँग को पूरा करने के लिए इस क्षेत्र में नये आविष्कार किये गये। 1733 ई. में "जॉन के" के द्वारा फ्लाईंग शटल लूम (Flying Shuttle Loom) की खोज की गई जिसकी सहायता से कम समय में अधिक चौड़ा कपड़ा बनाना संभव हो गया। जेम्स हरग्रीव्ज ने 1765 ई. में कताई की मशीन (Spinning Jenny) बनाई, जिससे एक व्यक्ति एक

साथ कई धागे कात सकता था। 1769 ई. में "रिचर्ड आर्कराइट" ने वाटर फ्रेम (Water Frame) का अविष्कार किया जिससे पहले की अपेक्षा मजबूत धागा बनाया जाने लगा। 1779 ई. में "सैम्यूअल क्राम्टन" द्वारा बनाई गई "म्यूल" द्वारा कता हुआ धागा बहुत मजबूत और बढिया होता था। 1787 ई. में एडमड कार्टराइट द्वारा पावरलूम यानी शक्ति चालित करघे का आविष्कार किया गया।

लौह उद्योग में नये तकनीकी परिवर्तन :–

इंग्लैण्ड में मशीनीकरण में काम आने वाली मुख्य सामग्री कोयला और लौह अयस्क, बहुतायत से उपलब्ध था। इसके अलावा, वहाँ उद्योग में काम आने वाले अन्य खनिज जैसे– सीसा, ताँबा और रांगा (टिन) भी खूब मिलते थे। लेकिन पुरानी पद्धति से लोहे की माँग की पूर्ति नहीं की जा सकती थी अतः लौह अयस्क को शुद्ध करने के लिए विभिन्न विधियों की खोज की जाने लगी। 1709 ई. में "अब्राहम डर्बी" द्वारा धमन भट्टी का आविष्कार किया गया जिसमें सर्वप्रथम कोक (पत्थर का कोयला) का प्रयोग किया जिससे लौह अयस्क को पिघलाने और साफ करने का कार्य सुगम हो गया। इस आविष्कार ने धातुकर्म उद्योग में क्रांति ला दी। द्वितीय डर्बी ने (1711–68 ई) ने ढलवा लोहे से पिटवाँ कर लोहे का विकास किया। हेनरी कोर्ट ने (1740–1823 ई.) ने आलोडन भट्टी (Puddling Furance) (जिससे पिघले लोहे में से अशुद्धि को दूर किया जा सकता था) और बेलन मिल (Rolling mil) का आविष्कार किया, जिससे शुद्ध और अच्छा लोहा बनना संभव हुआ। लोहे से बनी मशीन अधिक वजनदार होती थी और उनमें जंग भी लग जाती थी। इस समस्या से छुटकारा पाने के लिए खोज हुई और इस्पात का अविष्कार हुआ। इस्पात बनाने में लोहे में कुछ मात्रा में कार्बन, मैंगनीज तथा अन्य पदार्थों का उपयोग किया गया। इस्पात लोहे की अपेक्षा हल्का, मजबूत जंगरोधी और लचकदार होता था। हेनरी बेसेमर ने एक नयी इस्पात बनाने की विधि खोजी जिसे बेसेमर प्रक्रिया के नाम से जाना जाता है। इस विधि से ढलवीं लोहे से सीधा इस्पात तैयार किया जाता था इससे लौह उद्योग में एक क्रांति आई।

परिवहन के क्षेत्र में नवीन आविष्कार:–

बढ़ते व्यापार एवं उद्योग के कारण परिवहन के साधनों में सुधार की आवश्यकता महसूस की गई। परिवहन को आसान और सस्ता बनाने के लिए स्कॉटलैण्डवासी मकाडम ने सड़क निर्माण का एक नया तरीका निकाला जिसमें सड़क के निचले भाग में भारी पत्थरों की परत उसके वाद छोटे–छोटे पत्थरों की परत और उसके बाद मिट्टी बिछायी जाती थी।

भारी सामान का परिवहन सड़क मार्ग से खर्चीला और असुविधा जनक होता था। अतः भारी सामान के परिवहन को सुगम व सस्ता करने के लिए नहरों का निर्माण कराया गया। इंग्लैण्ड में पहली नहर "वर्सली कैनाल" 1761 ई. "जेम्स ब्रिदली" द्वारा बनाई गई। इससे माल ढोने का खर्चा आधा रह गया। इंग्लैण्ड में 1788 ई. से 1796 ई. में अनेक नहरों का निर्माण कराया गया। जिसके कारण यह काल "नहरोन्माद" के नाम से पुकारा जाने लगा। 1869 ई. में फ्रांसिसी इंजिनियर फर्टिनोद द लैस्पैथ ने स्वेज नहर का निर्माण कराया, जो भूमध्य सागर और लाल सागर को मिलाती है, इससे यूरोप और भारत के मध्य की दूरी एक तिहाई कम हो गई। परिवहन को अधिक सस्ता और सुगम बनाने के लिए परिवहन साधनों में भाप की शक्ति का प्रयोग किया जाने लगा। अमेरिकी रोबर्ट फुल्टन ने 1807 ई. में प्रथम–वाष्प चलित नौका का आविष्कार किया। जो पहली बार हडसन नदी में चली। स्थल मार्ग पर लोहे की पटरियों पर चलने वाले रेल इंजन के अविष्कार ने यातायात के क्षेत्र में क्रांति ला दी। 1814 ई. में जार्ज स्टीफेन्स ने प्रसिद्ध भाप इंजन "रॉकेट" का आविष्कार किया, इसी के साथ रेलगाड़ियाँ परिवहन का एक ऐसा साधन बन गया, जो वर्ष भर उपलब्ध रहता था। 1830 ई. में प्रथम रेलगाड़ी मैन चेस्टर और लिवरपूल के बीच चली। रेल के आविष्कार ने कोयला, लोहा एवं अन्य औद्योगिक उत्पादों को कम समय और कम खर्च में लाना–ले जाना संभव बना दिया।

संचार के क्षेत्र में हुए नये प्रयोग :–

1844 ई. में सैम्युअल मौर्स ने एक व्यावहारिक तार यंत्र का आविष्कार किया। इस तार–यंत्र ने विश्व के महाद्वीपों को परस्पर जोड़ने का काम किया। 1876 ई. में ग्राहम बैल ने टेलीफोन का आविष्कार किया जिसने संचार की दुनिया में क्रांति ला दी।

औद्योगिक क्रांति के परिणाम :–

औद्योगिक क्रांति के परिणामों को चार भागों में अध्ययन की दृष्टि से बांट सकते है।

1. आर्थिक
2. राजनैतिक
3. सामाजिक
4. वैचारिक परिणाम

1. आर्थिक परिणाम:– उत्पादन एवं वाणिज्य में असंतुलित वृद्धि हुई तथा आर्थिक संतुलन बिगड़ा। ग्रामीण क्षेत्र की अपेक्षा नगरों का अधिक विकास हुआ। कुटीर उद्योगों का विनाश हुआ। राष्ट्रीय बाजारों को राज्य द्वारा संरक्षण मिला तथा औद्योगिक पूंजीवाद का विकास हुआ।

2. **राजनैतिक परिणाम :–** राजनीति में लोकतंत्र की माँग बढी तथा मध्यम वर्ग की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं का उदय हुआ। औद्योगिक क्रांति से औपनिवेशिक स्पर्धा की शुरुआत हो गई। श्रमिक संगठित हुए और अपनी माँगों को लेकर आन्दोलनों का उदय हुआ।

3. **सामाजिक परिणाम :–** नये सामाजिक वर्ग का उदय हुआ। नैतिक मूल्यों में गिरावट आई, संयुक्त परिवार प्रथा में बिखराव हुआ। नयी संस्कृति का जन्म हुआ तथा मानवीय संबंधों में गिरावट आई। शहरों में मजदूरों की संख्या बढने से गन्दी बस्तियों की समस्या बढी।

4. **वैचारिक परिणाम :–** आर्थिक उदारवाद का स्वागत किया गया। समाजवाद का उदय हुआ।

जर्मनी और इटली का एकीकरण

जर्मनी का एकीकरण :– जर्मनी 18वीं शताब्दी के अन्त में 300 से अधिक छोटी–बड़ी रियासतों में बँटा हुआ था। भौगोलिक दृष्टि से जर्मनी के राज्यों को मोटे तौर पर तीन भागों में बाँटा जा सकता है, यथा उत्तरी,मध्य तथा दक्षिणी। उत्तरी भाग में प्रशा, सैक्सनी, हनोवर, फ्रेंकफर्ट, आदि राज्य थे, जबकि मध्य भाग में राइनलैण्ड और दक्षिणी में बुर्टेम्बर्ग, बवेरिया, बादेन, पैलेटिनेट, हेस–डर्मेस्टाट आदि। आकार और सैनिक शक्ति की दृष्टि से "प्रशा" सबसे शक्तिशाली था लेकिन राजनैतिक दृष्टि से विखंडित होते हुए भी दो बातें जर्मनी के राज्यों को आपस में जोड़े हुई थी। पहली राज्यों में रोमन सम्राट के प्रति सैद्धान्तिक रूप से आदर की भावना रखना तथा दूसरी "डाइट" का अस्तित्व जहाँ राज्यों के प्रतिनिधि एक मंच पर उपस्थित होते थे।

जर्मनी में राष्ट्रीयता के निर्माण का कारण 19 वी. शताब्दी में हुई फ्रांसीसी लिपान के अनुसार– ''यह इतिहास के मजाकों में से एक है कि आधुनिक जर्मनी का जन्मदाता नेपोलियन था"।

जर्मनी के एकीकरण में प्रमुख बाधाएँ:–

1. जर्मनी की समस्याओं में आस्ट्रिया का हस्तक्षेप।
2. जर्मन राज्यों में आर्थिक, पांथिक, सामाजिक तथा राजनैतिक असमानताऐं।
3. इंग्लैण्ड भी फ्रांस की भाँति जर्मन राज्यों में रुचि बनाए हुए था। उसने हनोवर प्रान्त के बहाने उत्तरी राज्यों में हस्तक्षेप कर रखा था।
4. अधिकांश राज्यों की शिथिल सैनिक शक्ति।
5. जन सामान्य में जागृति का अभाव।
6. जर्मन के दक्षिणी राज्यों में पोप का प्रभाव जो जर्मन एकीकरण में बाधक था।

जर्मन एकीकरण में सहायक तत्त्व :–

1. जॉलवरीन :– जर्मनी के राजनैतिक एकीकरण की शुरुआत से पूर्व उसके आर्थिक एकीकरण की शुरुआत हो चुकी थी। जो प्रशा द्वारा 1818 ई. में भवार्ज बर्ग–सोंदर शोसन नामक छोटे राज्यों से सीमा शुल्क संधि जॉलवरीन की गई। दोनों राज्यों के मध्य चुंगी समाप्त कर दी गई तथा व्यापार निर्बाध रूप से होने लगा। इस आर्थिक संधि ने प्रादेशिक व क्षेत्रीय प्रभाव को कम कर दिया जो जर्मनी के एकीकरण में बाधक थी। कैटलबी के अनुसार "जॉलवरीन के निर्माण ने भविष्य में प्रशा के नेतृत्व में जर्मनी के राजनीतिक एकीकरण का मार्ग तैयार कर दिया। राबर्ट इरगेग ने लिखा कि "जॉलवरीन ने क्षेत्रीय भावनाओं को दबाया तथा मजबूत जर्मन राष्ट्रवादी तत्त्वों को प्राथमिकता दी।" 1834 ई. तक जर्मन के सभी प्रमुख राज्य इसके सदस्य बन गये। प्रारम्भ में जॉवलरीन के पीछे प्रशा का कोई राजनीतिक उद्देश्य नहीं रहा परन्तु धीरे–धीरे प्रशा जालवरीन के नेतृत्व के माध्यम से जर्मन एकीकरण के राजनीतिक नेतृत्व में उत्तरदायित्व लेने के लिए अज्ञात रूप से प्रस्तुत हो रहा था।

2 .बौद्धिक आन्दोलन :–

जर्मनी के एकीकरण में जर्मन के दार्शनिक, इतिहासकार, साहित्यकार व कवियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। लिफ्टे, ईगल, डालमेल हार्डेनबर्ग, हेटिंग हाइन प्रमुख दार्शनिकों की भूमिका रही, जिन्होंने जर्मन लोगों में ''जर्मन जाति सर्वश्रेष्ठ मनुष्य'' होने की भावना भर दी। फिक्टे ने जर्मनी में फ्रांस विरोधी विचारों को उचित दिशा देते हुए उसमें राष्ट्रीयता की भावना भर दी। जर्मनी के जेना विश्वविद्यालय में 1815 ई. में बर्शेनशैफ्ट नामक देशभक्त संगठन का निर्माण किया गया। इस संगठन ने जर्मन देशवासियों के नैतिक उत्थान पर जोर दिया। इस संस्था ने देशवासियों में न्याय, स्वतंत्रता एवं एकता की भावना भर दी।

3. औद्योगिक विकास :–

जॉलवरीन की स्थापना और विस्तार के साथ जर्मनी में व्यापार और उद्योगों के विकास का मार्ग मिला। इस समय प्रशा और रूस दोनों प्रत्येक उद्योग की आधारशिला माने जाते थे। इन संसाधनों से प्रशा में औद्योगिकीकरण तीव्र गति से हुआ। कई स्थानों पर सूती मिलों की स्थापना की गई और रेल निर्माण का विस्तार हुआ तथा जर्मनी के अनेक नगरों को रेलमार्ग से जोड़ा गया। 1860 ई. तक जर्मनी की गणना यूरोप के औद्योगिक राज्यों में की जाने लगी थी। जबकि आस्ट्रिया को अपनी रूढ़िवादी नीति तथा आस्ट्रिया–प्रशा युद्ध के कारण तीव्र आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ रहा था। जबकि प्रशा अपने बढ़ते हुए व्यापार, वाणिज्य और उद्योग के कारण उन्नति कर रहा था।

3. बिस्मार्क का योगदान :—

1861 ई. में प्रशा शासक फ्रेडरिक विलियम चतुर्थ की मृत्यु हो जाने पर 64 वर्षीय विलियम प्रथम शासक बना। विलियम प्रथम का मस्तिष्क उतना विचारवान व तीक्ष्ण नहीं था, लेकिन उसमें योग्य व्यक्तियों को परखने की एक अनोखी प्रतिभा थी। वह उदारवादी विचारों में विश्वास करता था। लेकिन उसका मानना था कि जर्मनी का एकीकरण राजतंत्र एवं सुदृढ़ सेना के माध्यम से प्रशा ही कर सकता है। प्रशा की सेना को सुदृढ़ करने के लिए बानरून को युद्ध मैत्री और वानमोल्टेक को प्रमुख सेनापति बनाया। जब सैनिक सुधारों को लेकर संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया तब इस गतिरोध को दूर करने के लिए विलियम प्रथम ने बिस्मार्क को अपना चांसलर नियुक्त किया। बिस्मार्क एक चतुर राजनीतिज्ञ, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों का जानकार तथा कूटनीतिक कुशलता से परिपूर्ण व्यक्तित्व का धनी व्यक्ति था। बिस्मार्क का मानना था कि 1848 से 1849 ई. तक का जो समय राष्ट्रवादियों ने वाद विवाद में समाप्त कर दिया वह उनकी भूल थी। उसका मानना था कि उस काल की बडी समस्यायें भाषण और बहुमत के प्रस्ताव द्वारा नहीं बल्कि रक्त और लौह की नीति से सुलझ सकती थी। बिस्मार्क ने इस कारण प्रशा को शक्तिशाली राज्य बनाने के लिए संसद के निचले सदन द्वारा सैन्य बजट अस्वीकार करने पर उच्च सदन से ही पारित करवा अपनी दृढता का परिचय दिया। जर्मनी के एकीकरण का कार्य तीन चरणों में हुआ—

चित्र 4.1 बिस्मार्क

1. डेनमार्क से युद्ध एवं गेस्टाइन सन्धि :— श्लेसविग तथा हॉल्सटाइन दो डचियों पर डेनमार्क का अधिकार था लेकिन ये डेनमार्क का अविभाज्य अंग नहीं थी। हॉल्सटाइन की अधिकांश जनसंख्या जर्मन थी, साथ ही हॉल्सटाइन जर्मन संघ का सदस्य भी था। दूसरी श्लेसविंग में जर्मन लोग बहुमत में तो थे लेकिन वहाँ डेन लोग भी रहते थे। डेन लोग जर्मनी के एकीकरण के विरोधी थे। 1852 ई. में लंदन में हुए सम्मेलन में यूरोप के शासकों ने डेनमार्क का अधिकार इन डचियों पर इस शर्त पर माना कि भविष्य में डेनमार्क इन को अपने में विलय नहीं करेगा। लेकिन 10 वर्ष वाद ही 1863 ई. में डेनमार्क के शासक फ्रेडरिक ने इन दोनों रियासतों पर अधिकार कर लिया।

इस प्रश्न पर बिस्मार्क को राजनीतिक योग्यता और कूटनीतिक कुशलता दिखाने का अवसर मिल गया। बिस्मार्क इस अवसर का लाभ उठाकर आस्ट्रिया को जर्मनी से बाहर करके जर्मन संघ को समाप्त करना चाहता था। बिस्मार्क को अपने प्रयासों में सफलता मिली और जनवरी 1864 ई. में दोनों डचियों को लेकर प्रशा और आस्ट्रिया के मध्य समझौता हुआ, जिसमें दोनों रियासतों पर डेनमार्क के अधिकार अस्वीकार कर अंतिम चेतावनी देने का निश्चय किया। यह समझौता बिस्मार्क की विजय थी। फरवरी 1864 ई. में आस्ट्रिया और प्रशा की संयुक्त सेना ने डेनमार्क को हरा दिया। दोनों डचियों के अधिकार को लेकर 14 अगस्त 1865 ई. को गेस्टाइन नामक स्थान पर विलियम और फ्रांसिस जोसफ दोनों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस समझौते के अनुसार हॉल्सटाइन आस्ट्रिया को और श्लेसविंग प्रशा को दिया गया तथा लावेन बुर्ग की डची प्रशा को बेच दी गई। कील नामक बन्दरगाह पर प्रशा को किलेबन्दी करने का अधिकार मिल गया।

गेस्टाइन समझौता आस्ट्रिया की राजनीतिक भूल और बिस्मार्क की बड़ी कूटनीतिक विजय थी। बिस्मार्क ने आस्ट्रिया के साथ हॉल्सटाइन के आगामी प्रश्न पर युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

2. आस्ट्रिया—प्रशा एवं प्राग की संधि :—

बिस्मार्क का दूसरा कदम गेस्टाइन समझौते के बाद आस्ट्रिया के विरुद्व युद्ध की तैयारी करना था । बिस्मार्क ने एक ओर तो युद्ध की तैयारी शुरू कर दी तथा दूसरी और कूटनीति के माध्यम से आस्ट्रिया को यूरोपियन राष्ट्रों से सहायता न मिले

इसके प्रयास भी शुरू कर दिये। इन कार्यों के लिए अभी उसे अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण भी उसके अनूकूल था। इंग्लैण्ड यूरोपीय राज्यों में हस्तक्षेप न करने की नीति पर चल रहा था। रूस की सहानभूति, पौलेण्ड में चल रहे विद्रोह में सहायता कर प्राप्त कर ली। फ्रांस को राइन के प्रदेश का कुछ भाग देने का वादा कर तटस्थ रहने के लिए तैयार कर लिया। इटली के एकीकरण में आस्ट्रिया बाधक था। 1866 ई. में प्रशा और सार्डीनिया में समझौता हुआ जिसके अनुसार सार्डीनिया आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध छेड़ता है तो वेनेशिया उसे दिलवा दिया जायेगा।

जब हॉल्सटाइन में जर्मन लोग आस्ट्रिया के विरुद्वआन्दोलन कर रहे थे तो बिस्मार्क गुप्त रूप से उन्हें समर्थन दे रहा था। दूसरी और आस्ट्रिया हॉल्सटाइन में ड्यूक ऑफ आगस्टस वर्ग के पक्ष में चल रहे आन्दोलन को प्रोत्साहित कर रहा था। इस मुद्दे पर आस्ट्रिया व प्रशा में युद्ध प्रारम्भ हो गया। लेकिन 3 जुलाई 1866 ई. को सेडोवा कोनिग्राज का निर्णायक युद्ध हुआ, जिसमें आस्ट्रिया पूर्ण रूप से पराजित हुआ और आस्ट्रिया व प्रशा के मध्य 23 अगस्त 1866 ई. को प्राग की सन्धि हुई। हॉल्सटाइन डची प्रशा में शामिल हो गई तथा प्रशा के नेतृत्व में उत्तरी जर्मन परिसंघ बनाया गया जिसमें आस्ट्रिया को शामिल नहीं किया।

3. फ्रेंको–प्रशियन युद्ध एवं फ्रेंकफर्ट संधि :–

फ्रांस को यह आशा थी कि प्रशा–आस्ट्रिया के तटस्थ रहने पर उसे राइन का कुछ प्रदेश मिल जायेगा, जिससे उसकी सीमा राइन नदी तक हो जायेगी। लेकिन बिस्मार्क ने इस की उपेक्षा की। प्रशा की विजय उत्तरी जर्मन परिसंघ बनने से फ्रांस की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को आधात पहुँचा। उधर फ्रांस के राजनीतिज्ञ सेडोवा का प्रतिशोध लेने की माँग कर रहे थे। नेपोलियन तृतीय अपनी गिरती हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना चाहता था, और कालान्तर में "युद्ध" दोनों राष्ट्रों को अपनी–अपनी समस्या का समाधान नजर आ रहा था।

नेपोलियन तृतीय ने लग्जम्बर्ग खरीदने का प्रस्ताव रखा था। जर्मनी के राष्ट्रवादियों, समाचार पक्षों एवं राजनीतिज्ञों ने लग्जम्बर्ग फ्रांस को देने से मना कर दिया। दूसरा तनाव पूर्ण प्रश्न स्पेन की राजगद्दी को लेकर हुआ, जिससे दोनों देशों के संबंध बिगड़ गये और अन्त में युद्ध के नगाड़े बज गये।

15 जुलाई 1870 ई. को फ्रांस व प्रशा के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया। जर्मनी सेनाओं ने फ्रांस पर तीनों ओर से आक्रमण किया। बीसेनबर्ग, ग्रवलाट के युद्धों में फ्रांस की पराजय हुई। सबसे महवपूर्ण युद्ध 2 सितम्बर 1870 ई. को हुआ, जिसमें प्रशा के सेनापति बॉनमोल्टेक ने फ्रांसीसी सेना को पूर्ण रूप से परास्त कर दिया। नेपोलियन तृतीय ने आत्मसमर्पण कर दिया। 18 जनवरी 1871 ई को वर्साय के विख्यात महल में बिस्मार्क ने जर्मनी के सम्राट विलियम प्रथम का राज्याभिषेक किया। 28 फरवरी, 1871 को प्रशा–फ्रांस युद्ध समाप्त हो गया। 21 फरवरी, 1871 ई. को फ्रेंकफर्ट की संधि पर दोनों देशों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हुए। इस संधि में फ्रांस को मेज व स्ट्रामवर्ग सहित अल्सास व लोरेन के प्रदेश जर्मनी को देने पडे। फ्रांस को युद्ध हर्जाने के रूप में 20 करोड पॉण्ड की रकम क्षतिपूर्ति के रूप में देने के लिए बाध्य किया, जो तीन वर्ष में चुकाने थे।

कहा जा सकता है कि जर्मनी का एकीकरण "रक्त और लोहे" की नीति, बिस्मार्क के दृढ़ निश्चय, अदम्य साहस तथा कूटनीतिक कुशलता के कारण ही हो सका।

इटली का एकीकरण :– इटली के एकीकरण पर नेपोलियन की विजयों का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा। नेपोलियन ने इटली की विजय के पश्चात् इटली में गणतन्त्र की स्थापना की और सम्राट बनने के बाद अनेक छोटे–बड़े राज्यों को समाप्त कर केवल तीन भागों में समाहित कर दिया था। सामन्तवादी व्यवस्था समाप्त कर दी और आन्तरिक व्यापार पर प्रतिबंधों का अन्त कर दिया। इटली में एक समान कानून लागू किये गये। जब नेपोलियन ने इटली का उपनिवेश के रूप में प्रयोग किया, तो इटलीवासियों की राष्ट्रीय भावनाएँ भड़क उठी। इन्हीं कारणों से नेपोलियन को इटली में राष्ट्रवाद का जन्मदाता कहा जाता है।

मेरियट के अनुसार "नेपोलियन ही वह पहला व्यक्ति था, जिसने सर्वप्रथम इटली को एकता प्रदान की"।

इटली के एकीकरण में प्रमुख बाधाएँ :–

1. इटली में प्रतिक्रियावादी विदेशी प्रभुत्व का होना एक प्रमुख बाधा थी। लोम्बार्डी व वेनेशिया सीधे नियत्रंण में थे और मेडेना व टस्कनी पर आस्ट्रिया से संबंधित राजकुमारों का अधिकार था।
2. पोप अपने राज्य रोम पर अपनी सत्ता बनाये रखना चाहता था।
3. इटली मोटे तौर पर तीन राजनीतिक इकाइयों में विभक्त था जो एकीकरण में प्रमुख बाधा थी।
4. इटली का सामन्तवादी एवं कुलीन वर्ग नेपोलियन के पतन के पश्चात् पुनः सामन्तवादी तथा जागीरदारी प्रथा स्थापित करना चाहता था क्योंकि कुलीन वर्ग को डर था कि एकीकरण होने के पश्चात् उनका प्रभाव समाप्त हो जायेगा।
5. इटली में अभी तक राष्ट्रीय चेतना जागृत नहीं हुई थी। सभी

राज्यों की अपनी अलग–अलग परम्पराएँ एवं रीति रिवाज थे। एक राज्य दूसरे राज्य से मिलकर नहीं रहना चाहता था।

6. इटली के एकीकरण में एक यह भी बाधा थी कि एकीकरण किस विचारधारा के अन्तर्गत किया जाये ?इस बारे में राजनीतिज्ञ एकमत नहीं थे। मैजिनी और गैरीबाल्डी इटली का एकीकरण गणराज्य के रूप में चाहते थे, जबकि जियोबर्टी, पोप के अधीन राज्यों के संघ का समर्थक था।

इटली के एकीकरण में सहायक प्रमुख संगठन एवं व्यक्ति :–

1. कार्बोनरी :– इस गुप्त संस्था की स्थापना 1810 ई. में नेपल्स में हुई थी। इस संस्था में सभी वर्गों के लोग सम्मिलित थे। इस संस्था के दो प्रमुख उद्देश्य थे– विदेशियों को इटली से बाहर निकालना और वैधानिक स्वतन्त्रता की स्थापना करना। प्रभावशाली नेतृत्व और निश्चित उद्देश्यों के अभाव में यह संस्था विफल हो गई।

2. यंग इटली :– यंग इटली की स्थापना मैजिनी ने 1831 ई. में की, जिसने इटली के राष्ट्रीय आन्दोलन में शीघ्र कार्बोनरी का स्थान ले लिया। मैजिनी इटली के युवकों पर विश्वास करता था। उसका कहना था कि यदि समाज में क्रांति लानी है तो नेतृत्व नवयुवकों के हाथों में दे दो उनके हृदय में असीम शक्ति छिपी होती है। इस संस्था के तीन नारे थे परमात्मा पर विश्वास रखो, सब भाईयों को एक साथ मिलाओ और इटली को मुक्त करो। इस संस्था के उद्देश्य स्पष्ट थे कि इटली की एकता और स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा स्वतंन्त्रता, समानता और जनकल्याण पर आधारित राज्य की स्थापना हो। इस संस्था ने इटलीवासियों में देशभक्ति, संघर्ष, त्याग, बलिदान और स्वतन्त्रता की भावना भर दी।

मैजिनी ने इटली की जनता से आह्वान किया और कहा कि "संयुक्त इटली के आदर्श को छोड़कर अन्य किसी चीज के पीछे मत दौड़ो। इटली एक राष्ट्र बन कर रहेगा। मैजिनी देश भक्तों की दृष्टि में देवदूत था जो इटली के भविष्य को निर्मित करने आया था। वास्तव में मैजिनी ने इटली के एकीकरण की आधारशिला रखी थी। साउथगेट लिखते है कि "यह मैजिनी ही था, जिसने अपने देशवासियों में स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न की। यद्यपि वह काबूर की भाँति सेना नायक नहीं था परन्तु वह एक कवि, आदर्शवादी विचारक और क्रांति का अग्रदूत था।"

काउन्ट केमिलो– डी काबूर का जन्म 1810 ई. में ट्यूरिन के एक कुलीन परिवार में हुआ था। सैनिक शिक्षा प्राप्त कर उसने सेना में इंजीनियर की नौकरी कर ली। वह उदारवादी विचारकों का समर्थक था साथ ही इंग्लैण्ड यात्रा के दौरान संसदीय प्रणाली का अध्ययन भी किया था। वह इटली में इसी प्रकार की प्रणाली स्थापित करना चाहता था। काबूर का मानना था कि इटली का एकीकरण पीडमाण्ट के नेतृत्व में ही पूर्ण हो सकता है। इसी दिशा में अपने विचारों के प्रचार–प्रसार के लिए 1847 ई. में वह वित्त एवं उद्योग मंत्री बना और 1852 ई. में विक्टर इमेनुअल ने उसे प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। काबूर एक व्यावहारिक, कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ एवं राजतन्त्र का समर्थक व्यक्ति था। वह इटली की शक्ति एवं सामर्थ्य से भली–भाँति परिचित था। इसीलिए उसकी सोच थी कि जब तक विदेशी सहायता प्राप्त नहीं होगी तब तक इटली का एकीकरण नहीं हो सकता। इसी कारण वह इटली के एकीकरण के प्रश्न का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करना चाहता था। काबूर की आन्तरिक नीति, सुधारों और विदेश नीति ने इटली का एकीकरण पूर्ण किया।

काबूर का एकीकरण में योगदान :–

काबूर वह व्यक्ति था जिसके बिना मैजिनी का आदर्शवाद और गैरीबाल्डी की वीरता निरर्थक होती। काबूर का मानना था कि 1. पीडमांट सार्डीनिया ही इटली का एकीकरण करने में समर्थ है। 2. आस्ट्रिया एकीकरण में सबसे अधिक बाधक हैं 3. आस्ट्रिया को बिना विदेशी सहायता के बाहर नहीं किया जा सकता है।

काबूर यथार्थवादी व्यावहारिक राजनीति में विश्वास करता था। वह इटली के प्रश्न का अन्तरराष्ट्रीय –करण करना चाहता था ताकि विदेशी शक्तियों की सक्रिय मदद एवं सहानुभूति हासिल की जा सके। इस समय यूरोप में दो ही शक्तिशाली देश थे फ्रांस और इंग्लैण्ड। इंग्लैण्ड ने यूरोपीय देशों में हस्तक्षेप नहीं करने की नीति बनाने से, उससे मदद मिलने की आशा नहीं थी। फ्रांस का शासक इटली के एकीकरण के प्रश्न पर इटली से सहानुभूति रखता था। अतः काबूर इसी दिशा में आगे बढ़ना चाहता था। काबूर ने क्रिमिया की मदद के लिए सेना भेजकर सहानुभूति और मित्रता प्राप्त कर ली। काबूर को इस मित्रता का लाभ पेरिस सम्मेलन (1856 ई.) में मिला। आस्ट्रिया के विरोध के बाद भी सार्डिनिया राज्य को पेरिस सम्मेलन में आमंत्रित किया गया। काबूर ने इस सम्मेलन में इटली की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के लिए आस्ट्रिया को जिम्मेदार ठहराया। पेरिस सम्मेलन में काबूर ने इटली के प्रश्न पर नैतिक विजय प्राप्त कर ली।

नेपोलियन का सहयोग एवं लोम्बार्डी की प्राप्ति :–

सम्राट नेपोलियन तृतीय लगभग एक माह की छुट्टी

मनाने सार्डीनिया की सीमा के पास ठहरा हुआ था। काबूर बिना किसी औपचारिक नियंत्रण के प्लोम्बियर्स जा पहुँचा। काबूर और नेपोलियन की भेंट के फलस्वरूप एक समझौता हुआ। जिसमें निम्नलिखित निर्णय हुए :–

1. आस्ट्रिया और सार्डीनिया के मध्य युद्ध होने पर 2 लाख सैनिक सहायता फ्रांस देगा।
2. नेपल्स, सिसली और पोप के राज्य बने रहेंगे।
3. लोम्बार्डी और वेनेशिया सार्डिनिया को प्राप्त होंगे।
4. फ्रांस की सहायता के बदले नीस व सेवाय के प्रदेश फ्रांस को मिलेंगे।
5. विक्टर इमेन्युअल अपनी पुत्री का विवाह प्रिंस जेरोम बोनापार्ट के साथ कर देगा।

इस समझौते में यह तय किया गया कि आस्ट्रिया को भड़का कर यथाशीध्र युद्ध आरम्भ किया जाये, ताकि आस्ट्रिया आक्रामक लगे तथा सार्डीनिया आत्मरक्षार्थ लड़ने वाला प्रतीत हो। काबूर ने आस्ट्रिया को भड़काने के लिए मस्स व कर्राटा प्रान्तों में विद्रोह करवा दिया। आस्ट्रिया ने वैसी ही प्रतिक्रिया दी जैसी काबूर चाहता था। आस्ट्रिया ने 23 अप्रैल 1859 ई. को तीन दिन का अल्टीमेटम दे दिया। 29 अप्रैल, 1859 ई. को फ्रांस ने इटली के पक्ष में युद्ध की घोषणा कर दी। आस्ट्रिया की लगातार पराजय हो रही थी, लेकिन फ्रांस सार्डीनिया के बिना पूछे युद्ध से अलग हो गया और नेपोलियन तृतीय ने 11 जुलाई, 1859 ई. को विलाफ्रेंका नामक स्थान पर आस्ट्रिया के सम्राट जोसेफ से भेंट कर युद्ध विराम का समझौता कर लिया जिसकी निम्न शर्तें तय की गई :–

1. लोम्बार्डी सार्डिनिया को दिया गया।
2. वेनेशिया आस्ट्रिया को दिया गया।
3. परमा, मेडोना और अस्कनी को पुनः स्वतंत्र राज्य बना दिया गया। पोप के अधीन इटली राज्यों का संघ बनाया गया।

इस संधि से इटली के लोगों व काबूर को निराशा हाथ लगी। इस संधि से काबूर भी अप्रसन्न था, उसने त्याग पत्र दे दिया। विक्टर इमेन्युअल ने आस्ट्रिया और फ्रांस के साथ मिलकर 10 नवम्बर 1859 को ज्यूरिख की संधि पर हस्ताक्षर किये। ज्यूरिख की संधि द्वारा विलाफ्रेंका की विराम संधि की पुष्टि हो गई। इसी के साथ इटली का प्रथम चरण पूर्ण हो गया।

मध्य इटली का विलय :–

युद्ध समाप्ति के पश्चात् मध्य इटली के राज्यों ने परमा, मेडिना, टस्कनी, बोलोग्ना और रोमाग्ना में जनता ने विद्रोह कर दिये था। वे इटली में समाहित होने को उत्सुक थे। इंग्लैण्ड की अहस्तक्षेप की नीति और इटली के प्रति सहानुभूति इन राज्यों को इटली में एकीकृत होने को प्रोत्साहित कर रही थी। आस्ट्रिया चाहता था कि ज्यूरिख संधि के तहत इन राज्यों में पुराने शासक पुनः स्थापित कर दिये जाए। काबूर ने मौके का फायदा उठाकर फ्रांस को नीस और सेवायें के प्रदेश देने का वायदा करते हुए उसे अपनी ओर मिला लिया। मार्च 1860 ई. में मध्य इटली राज्यों में जनमत संग्रह कराया गया। इसमें परमा, मेडोना, टस्कनी, बोलोग्ना और वियोकेन्जा ने सार्डिनिया में और नीस व सेवायें ने फ्रांस के साथ मिलने का मत दिया। इंग्लैण्ड की सहानुभूति इटली के साथ थी, अतः मध्य इटली के राज्यों में जनमत संग्रह के प्रश्न पर इंग्लैण्ड नें फ्रांस के साथ इटली का पक्ष लिया। इसी के साथ इटली का दूसरा चरण पूरा हुआ।

गैरीबाल्डी और नेपल्स और सिसली का विलय :– ज्यूपस गैरीबाल्डी का जन्म 1807 ई. में नीस नामक नगर में हुआ था। उसके पिता उसको उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे, लेकिन गैरीबाल्डी का मन पढने में नहीं लगा। वह केवल इतना पढ़ सका कि पुस्तकें पढ़ सके और अपनी स्वतन्त्र तथा साहसिक प्रवृति को संतुष्ट कर सके।

ज्यूपस गैरीबाल्डी

गैरीबाल्डी भूमध्य सागर की यात्राओं के समय इटली के राष्ट्रभक्तों के सम्पर्क में आया था। वह मैजनी की युवा इटली का सदस्य भी बन गया था। उसने 1833 ई. में नौसैनिक षड़यंत्र में भाग लिया। वह पकड़ा गया और उसे मृत्यु दण्ड की सजा दी गई थी, लेकिन वह दक्षिणी अमेरिका चला गया। वहाँ उसने छापामार युद्ध का प्रशिक्षण लिया। 1854 ई. में वह वापस आया। उसने "लालकुर्ती"

नामक एक देशभक्तों का संगठन बनाया एवं इसी के दम पर वह सिसली में प्रवेश कर पाया।

नेपेल्स और सिसली में शासक विदेशी थे, साथ ही वह शासन करने योग्य भी नहीं थे। मैजिनी, फ्रांसिल क्रिस्ची और गैरीबाल्डी ने वहाँ विद्रोह की योजना बनाई। गैरीबाल्डी ने लगभग 1000 लाल कुर्ती वाले स्वयंसेवकों का दल बना 5 मई, 1860 ई. को सिसली पर आक्रमण कर दिया। गैरीबाल्डी ने विजय प्राप्त कर स्वंय को अधिनायक घोषित कर दिया। विक्टर इमेन्युअल स्वंय सेना लेकर नेपल्स की ओर बढ़ा। टिआनो नामक स्थान पर गैरीबाल्डी और विक्टर इमेन्युअल की भेंट हुई। गैरीबाल्डी ने विक्टर इमेन्युअल को इटली के शासक के रूप में स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् गैरीबाल्डी ने अपनी सेना और समस्त अधिकार विक्टर इमेन्युअल को समर्पित कर दिये। दक्षिण के राज्यों के इटली में विलय के साथ ही इटली का एकीकरण का तृतीय चरण पूर्ण हुआ।

इटली के एकीकरण का अन्तिम चरण वेनेशिया का विलय :—

1866 ई. में प्रशा और आस्ट्रिया के मध्य हुए युद्ध में इटली ने आस्ट्रिया के विरुद्व प्रशा को सैनिक सहायता दी। 3 जुलाई 1866 ई. को प्रशा ने आस्ट्रिया को पराजित कर दिया। प्रशा और आस्ट्रिया के मध्य प्राग की सन्धि हुई जिसमें इटली को वेनेशिया दिया गया।

रोम का विलय :—

रोम के बिना इटली की स्थिति उसी प्रकार थी, जैसे हृदय के बिना शरीर। रोम पोप के अधीन था और फ्रांस की सेनाएँ पोप की सुरक्षा के लिए मौजूद थी। इटली का रोम पर अधिकार का सपना तब पूर्ण हुआ जब अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ फ्रांस के विपरीत साबित हुई। 1870 ई. में प्रशा और फ्रांस के मध्य युद्ध हुआ। इसमें फ्रांस को प्रशा के विरुद्व सारी ताकत झोंकनी पड़ी, रोम से उसने सेना बुला ली। इसके बावजूद भी उसकी हार हुई। इस मौके का फायदा इटली ने उठाया और रोम पर अधिकार कर लिया। रोम में जनमत संग्रह कराया गया, जिसमें जनमत इटली के पक्ष में गया। रोम को संयुक्त इटली की राजधानी बनाया गया। 12 जून 1871 ई. को विक्टर इमेन्युअल ने संयुक्त इटली की संसद का उद्घाटन करते हुए ने कहा —"जिस कार्य के लिए हमने अपना जीवन भेंट चढाया था, वह आज पूरा हो गया है। हमारी राष्ट्रीय एकता स्थापित हो गई है। अब हमें अपने देश को सुखी एवं सम्पन्न बनाया है, हम रोम में हैं और रोम में ही रहेंगे।" रोम की प्राप्ति के साथ ही इटली एक भौगोलिक अभिव्यक्ति नहीं रहा अपितु एक स्वतंत्र सम्प्रभु राष्ट्र बन गया।

वास्तव में इटली का एकीकरण असंख्य देशभक्तों के बलिदान, मैजिनी के नैतिक बल, गैरीबाल्डी की तलवार, काबूर की कूटनीति एवं विक्टर इमेन्युअल की समझदारी से हुआ।

अभ्यास प्रश्न

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नः—

1. शुल्क संघ जॉलवेराइन कब स्थापित हुआ ?
1. सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति किस क्षेत्र में हुई ?
2. आलोडन भट्‌टी की खोज किसने की थी ?
3. विलियम प्रथम ने युद्ध मंत्री किसे बनाया था ?
4. गेस्टाइन समझौता किन देशों के मध्य हुआ ?
5. कार्बोनरी की स्थापना कब और कहाँ हुई ?

लघूत्तरात्मक प्रश्नः—

1. युवा इटली का निर्माण कब और किसने किया ?
2. जर्मनी के एकीकरण में बिस्मार्क का योगदान लिखिए।
3. पाम की संधि पर टिप्पणी लिखिए।
4. इटली के एकीकरण के विभिन्न चरणों को लिखिए।
5. वस्त्र उद्योग में औद्योगिक क्रान्ति के समय हुए परिवर्तनों को लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्नः—

1. यूरोप में राष्ट्रवाद उदय के कारण बताइए।
2. औद्योगिक के क्रान्ति के विभिन्न क्षेत्रों में हुए आविष्कारों का वर्णन कीजिए।
3. जर्मनी के एकीकरण में प्रमुख बाधाएँ व सहायक तत्त्वों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. इटली के एकीकरण को विस्तार से समझाइए।

अध्याय 5

लोकतन्त्र

1. लोकतन्त्र–अर्थ एवं विभिन्न प्रकार (Meaning and Various Forms of Democracy)

(A) लोकतन्त्र का अर्थ (Meaning of Democracy)

अंग्रेजी शब्द 'Democracy' का हिन्दी अनुवाद है– 'लोकतन्त्र', 'जनतन्त्र' अथवा 'प्रजातन्त्र'। अंग्रेजी शब्द 'Democracy' ग्रीक भाषा के दो शब्दों 'डेमोस' (Demos) तथा 'क्रेटिया' (Kratia) के संयोग से बना है। यद्यपि 'डेमोस' का मूल अर्थ है 'भीड़', किन्तु आधुनिक काल में इसका अर्थ 'जनता' से लिया जाने लगा है, और 'क्रेटिया' का अर्थ है 'शक्ति'। इस प्रकार शब्दार्थ की दृष्टि से 'डेमोक्रेसी' का अर्थ है 'जनता की शक्ति'। अतः 'डेमोक्रेसी' का अर्थ है जनता की शक्ति पर आधारित शासनतन्त्र। इसमें तीन अन्तः संबंधित अर्थ निहित हैं–

(1) यह निर्णय लेने की एक विधि है

(2) यह निर्णय लेने के सिद्धान्तों का एक समूह है तथा

(3) यह आदर्शात्मक मूल्यों से संबंधित अवधारणा है।

आधुनिक काल में लोकतन्त्र को केवल शासन का एक रूप ही माना जाता है। बर्न्स के अनुसार, "लोकतन्त्र एक ऐसा शब्द है जिसके अनेक अर्थ है और इसके साथ भावनात्मक अर्थ भी जुड़ा है।" लोकतन्त्र के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए जरूरी है कि हम उसके विभिन्न रूपों से जुड़ी अवधारणाओं से परिचित हों।

(B) लोकतन्त्र के विभिन्न रूप (Various forms of Democracy)

आधुनिक काल में लोकतन्त्र के प्रमुख रूपों एवं उनसे संबंधित अवधारणाओं को निम्नलिखित रूप में स्वीकार किया जाता है–

(1) राजनीतिक लोकतन्त्र,

(2) सामाजिक लोकतन्त्र,

(3) आर्थिक लोकतन्त्र,

(4) नैतिक लोकतन्त्र।

(1) राजनीतिक लोकतन्त्र – राजनीतिक लोकतन्त्र को अतीत में व्यक्तिवादी लोकतन्त्र कहा जाता था, किन्तु आधुनिक युग में इसे उदारवादी लोकतन्त्र कहा जाता है। आधुनिक युग में राजनीतिक लोकतन्त्र की उत्पत्ति पश्चिमी देशों में हुई है, अतः इसे कभी –कभी पश्चिमी लोकतन्त्र भी कहा जाता है। मार्क्सवादियों ने इसे पूंजीवादी लोकतन्त्र कहना पसन्द किया है।

उदारवादी विचारकों ने समस्त राजनीतिक लोकतन्त्र के दो रूपों का उल्लेख किया है–

(I) राज्य के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र, तथा

(ii) शासन के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र।

राज्य के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र का अर्थ लोकतान्त्रिक राज्य (Democratic State) से है। लोकतान्त्रिक राज्य की अवधारणा के अनुसार प्रभुसत्ता का निवास जनता में होता है और इसलिए जनता को सरकार के निर्माण, उसके नियंत्रण तथा उसको पदच्युत करने की पूर्ण व अन्तिम शक्ति भी प्राप्त होती है।

शासन के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र का अर्थ लोकतान्त्रिक शासन से है। वास्तव में लोकतान्त्रिक शासन की अवधारणा लोकतान्त्रिक राज्य की अवधारणा के सैद्धान्तिक पक्ष का ही विकसित एवं व्यावहारिक रूप है। यह उल्लेखनीय है कि राजनीतिक लोकतन्त्र से संबंधित ये दोनों अवधारणाएं कानूनी प्रभुसत्ता पर राजनीतिक प्रभुसत्ता की श्रेष्ठता को स्वीकार करती हैं। संक्षेप में, ये दोनों मानती हैं कि राजनीतिक प्रभुसत्ता द्वारा कानूनी प्रभुसत्ता पर नियंत्रण किया जाना चाहिए।

राजनीतिक लोकतन्त्र के एक अंग के रूप में लोकतान्त्रिक शासन के दो उपभेद हैं–

(1) प्रत्यक्ष अथवा शुद्ध लोकतन्त्र

(2) अप्रत्यक्ष अथवा प्रतिनिधि लोकतन्त्र

यह उल्लेखनीय है कि आधुनिक युग में प्रतिनिधि लोकतन्त्र के भी मुख्यतः दो रूप प्रचलित हैं –

(1) संसदीय लोकतन्त्र

(2) अध्यक्षात्मक लोकतन्त्र।

लोकतान्त्रिक राज्य एवं लोकतान्त्रिक शासन अर्थात् सम्पूर्ण राजनीतिक लोकतन्त्र की कुछ आधारभूत मान्यताएं है,

जैसे–

(1) राजनीतिक लोकतन्त्र उदारवादी संविधानवाद में विश्वास करता है।

(2) यह प्रभुसत्ता का निवास जनता में मानता है।

(3) राजनीतिक लोकतन्त्र का सैद्धान्तिक पक्ष लोकतान्त्रिक राज्य है और इसका व्यावहारिक पक्ष लोकतान्त्रिक शासन है।

(4) जनता शासन (सरकार) को नियुक्त करती है, उस पर नियंत्रण करती है तथा उसे हटा भी सकती है।

(5) राजनीतिक लोकतन्त्र स्वयं में साध्य नहीं होता है, अपितु लोकतान्त्रिक साध्यों एवं मूल्यों की प्राप्ति का साधन होता है।

(2) सामाजिक लोकतन्त्र –

समाज के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र को 'सामाजिक लोकतन्त्र' कहा जाता है। सामाजिक लोकतन्त्र का एक प्रमुख लक्ष्य है– सामाजिक समता की भावना। संक्षेप में, सामाजिक लोकतन्त्र का अर्थ है कि समाज में नस्ल, रंग (वर्ण), जाति, धर्म, भाषा, लिंग, धन, जन्म आदि के आधार पर व्यक्तियों के बीच विभेद नहीं किया जाना चाहिए और सभी व्यक्तियों को, व्यक्ति के रूप में, समान समझा जाना चाहिए। हर्नशा के अनुसार, "लोकतान्त्रिक समाज वह है, जिसमें समानता के विचार की प्रबलता हो तथा जिसमें समानता का सिद्धान्त प्रचलित हो।"[1] सामाजिक लोकतन्त्र की अवधारणा मुख्यतः सामाजिक समानता के अधिकार पर जोर देती है। इसका सामान्य अर्थ यही है कि सभी व्यक्तियों को समाज में समान महत्व प्राप्त होना चाहिए और किसी भी व्यक्ति को अन्य किसी भी व्यक्ति के सुख का साधन मात्र नहीं समझा जाना चाहिए। व्यवहार में सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना के लिए दो बातें आवश्यक हैं–

(1) धर्म, जाति, नस्ल, भाषा, लिंग, धन आदि के आधार पर समाज में मौजूद विशेषाधिकारों की व्यवस्था का अन्त किया जाये।

(2) सभी व्यक्तियों को सामाजिक प्रगति के समान अवसर प्रदान किये जायें।

(3) आर्थिक लोकतन्त्र –

अर्थव्यवस्था के एक प्रकार के रूप में लोकतन्त्र को 'आर्थिक लोकतन्त्र' कहा जाता है। वर्तमान सदी में आर्थिक लोकतन्त्र का विचार मार्क्सवादियों एवं समाजवादियों ने प्रस्तुत किया है। 18वीं व 19वीं सदी में व्यक्तिवादियों ने भी आर्थिक क्षेत्र में लोकतन्त्र की चर्चा की थी, जो मार्क्सवादियों व समाजवादियों के आर्थिक लोकतन्त्र से सर्वथा भिन्न एवं विपरीत है।

(4) नैतिक लोकतन्त्र –

कुछ विद्वानों ने लोकतन्त्र को एक नैतिक व आध्यात्मिक जीवन–दर्शन के रूप में स्वीकार किया है। लोकतन्त्र के प्रति इस नैतिक दृष्टिकोण को ही नैतिक लोकतन्त्र कहा जाता है। नैतिक लोकतन्त्र समस्त लोकतान्त्रिक दर्शन का व्यावहारिक रूप है, जिसमें मानव–मूल्यों को ही समाज व शासन का मूल आधार माना जाता है। इस रूप में नैतिक लोकतन्त्र की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति सन् 1789 की फ्रांस की उदार लोकतन्त्रवादी क्रांति 'स्वतन्त्रता, समानता व भाई–चारे' के नारे के रूप में हुयी थी। इन तीनों में 'भाई–चारे' (बन्धुत्व) का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसके बगैर व्यक्तियों में समानता नहीं हो सकती है और समानता नहीं होगी, तो स्वतन्त्रता भी नहीं पायी जा सकती है।

2. लोकतन्त्र सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (Various Theories and Concepts of Democracy)

लोकतन्त्र स्वयं में एक विस्तृत विचारधारा है और विद्वानों में इस तथ्य पर मतभेद है कि लोकतन्त्र में सत्ता का वास्तविक उपभोग कौन करता है, अथवा सत्ता का वास्तविक उपभोग किस वर्ग के द्वारा किया जाना चाहिए, शासक व शासित वर्ग में किस प्रकार के सम्बन्ध होते हैं और लोकतन्त्र की मूल्य–व्यवस्था क्या होनी चाहिए? इस प्रकार के चिंतन के परिणामस्वरूप लोकतन्त्र के विभिन्न सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गए हैं, जैसे–

(i) लोकतन्त्र का परम्परागत उदारवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण

(ii) लोकतन्त्र का बहुलवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण

(iii) लोकतन्त्र का विशिष्ट वर्गीय (अभिजन वर्गीय) सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण

(iv) लोकतन्त्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण

(v) लोकतन्त्र का समाजवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण

(i) लोकतन्त्र का परम्परागत उदारवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (The Traditional Liberal Theory and Concept of Demoracy) –

लोकतन्त्र के इस सिद्धान्त का विकास पश्चिमी जगत में पिछली तीन शताब्दियों के उदारवादी राजनीतिक चिंतन द्वारा किया गया है। इसे अक्सर लोकतन्त्र का पश्चिमी सिद्धान्त अथवा लोकतन्त्र का लोकप्रिय सिद्धान्त भी कह दिया जाता है। हॉब्स, लॉक, रूसो, बैन्थम, जे.एस. मिल., टी.एच.ग्रीन, मांण्टेस्क्यू, अब्राहम लिंकन, जैफरसन, हरबर्ट स्पैंसर आदि लोकतंत्र के परम्परागत

उदारवादी सिद्धान्त के प्रमुख विचारक माने जाते है। इन सभी विद्वानों ने व्यक्ति के सुख, स्वतंत्रता एवं अधिकार आदि के संदर्भ में अपने लोकतंत्र संबंधी विचार प्रस्तुत किये हैं।

लोकतंत्र के परम्परागत उदारवादी सिद्धान्त की आधारभूत मान्यतायें एवं लक्षण निम्नलिखित हैं–

(1) व्यक्ति बुद्धिमान प्राणी है, अतः अपना हित–अहित समझने की क्षमता रखता है।

(2) सभी व्यक्ति मूलतः समान हैं।

(3) शासन का गठन उदारवादी एवं लोकतान्त्रिक संविधानवाद के अनुसार होना चाहिए अर्थात् सीमित शासन के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।

(4) शासन (सरकार) की शक्ति का आधार 'जनता की इच्छा' होती है, अतः सरकार राजनीतिक सत्ता की मात्र न्यासी (ट्रस्टी) होती है।

(5) शासन के संचालन के निश्चित एवं आधारभूत नियम हैं, जैसे–(अ) शासन का संचालन जनता द्वारा (जनता के प्रतिनिधियों द्वारा) किया जाना चाहिए, (ब) शासन के गठन एवं संचालन में बहुमत के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए, (स) शासन को जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए, तथा (द) शासन का उद्देश्य व्यक्ति का हित होना चाहिए।

(6) व्यक्ति को नागरिक स्वतन्त्रताएं व अधिकार प्राप्त होने चाहिए तथा इनकी रक्षा के लिए स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना की जानी चाहिए।

(7) निश्चित अवधि के बाद स्वतन्त्र व निष्पक्ष चुनाव होने चाहिए और एक से अधिक राजनीतिक दल होने चाहिए।

(8) सरकार को जनमत का आदर करना चाहिए।

(ii) लोकतन्त्र का बहुलवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (The Pluralist Theory and Concept of Democracy) –

लोकतन्त्र के बहुलवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण का मूल आधार बहुलवादी विचारधारा है, जो समाज के संघात्मक स्वरूप में विश्वास करती है। लोकतन्त्र के इस सिद्धान्त का विकास एच.जे. लास्की, अर्नेस्ट बार्कर, मिस फॉलेट, जी.डी.एच.कोल, डिग्वी आदि ने किया है। द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद राबर्ट डहल ने भी इसके विकास में योगदान दिया। उसने बहुलवादी लोकतन्त्र को 'बहुलतन्त्रवाद' कहना पसन्द किया है। राबर्ट प्रिस्थस के अनुसार "लोकतन्त्र का बहुलवादी सिद्धान्त एक ऐसी सामाजिक–राजनीतिक प्रणाली है, जिसमें राज्य की शक्ति में अनेक निजी समूह तथा हित समूह अपनी भागीदारी निभाते हैं।"

(iii) लोकतन्त्र का विशिष्ट वर्गीय (अभिजन वर्गीय) सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (The Elitist Theory and Concept of Democracy)–

लोकतन्त्र के इस सिद्धान्त की सम्पूर्ण विचारधारा का केन्द्र अभिजन वर्ग है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले प्रमुख विचारक हैं– राबर्ट मिचेल्स, मोस्का, पैरेटो, बर्नहम, सी.राइट मिल्स आदि। राबर्ट मिचेल्स एक जर्मन विचारक हैं और उसने अपने विचार 'दी पॉलिटिकल पार्टीज' (The Political Parties) नामक ग्रन्थ में प्रस्तुत किये हैं। मोस्का इतालवी विद्वान् है, जिसने अपने विचार 'दी रूलिंग क्लास' (The Ruling Class) नामक कृति में प्रस्तुत किये है।

(iv) लोकतन्त्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (The Marxist Theory and Concept of Democracy)–

लोकतन्त्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त लोकतन्त्र के एक विशिष्ट रूप को प्रस्तुत करता है, जो अपनी प्रकृति से एक प्रकार का आर्थिक लोकतन्त्र है किन्तु मार्क्सवादियों ने इसे 'जनवादी लोकतन्त्र (People's Democracy) कहना पसन्द किया है। मार्क्सवादी लोकतन्त्र का मूल विचार कार्लमार्क्स तथा फ्रेडरिक एंजल्स की विचारधारा में दिखायी पड़ता है और इसे व्यावहारिक रूप लेनिन, स्टालिन, माओ त्से तुंग आदि ने दिया है।

(v) लोकतन्त्र का समाजवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण (The Socialist Theory and Concept of Democracy)–

लोकतन्त्र का समाजवादी सिद्धान्त लोकतन्त्र के उदारवादी सिद्धान्त तथा मार्क्सवादी सिद्धान्त के समन्वय से बना सिद्धान्त है। यह उदारवादी लोकतन्त्र में निहित व्यक्ति की राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा मार्क्सवादी लोकतन्त्र में निहित आर्थिक समानता के आदर्शो को एक साथ ही प्राप्त करना चाहता है। लोकतन्त्र का समाजवादी सिद्धान्त लोकतन्त्र के जिस स्वरूप पर बल देता है, उसे प्रायः लोकतान्त्रिक समाजवाद भी कहा जाता है। यह सिद्धान्त क्रान्ति एवं हिंसा के साधनों के स्थान पर विकासवादी एवं संवैधानिक साधनों में विश्वास करता है। इसके अनुसार संसदीय व्यवस्था वाले उदारवादी लोकतन्त्र के माध्यम से व्यक्ति की राजनीतिक स्वतन्त्रता की रक्षा भी संभव है और इसके द्वारा आर्थिक समानता के आदर्श को भी प्राप्त किया जा सकता है।

3. लोकतान्त्रिक शासन के प्रकार (Kinds of Democratic Government)

सम्पूर्ण उदारवादी लोकतन्त्र तथा इससे संबंधित

लोकतान्त्रिक शासन प्रणालियों के दो प्रमुख प्रकार स्वीकार किये जाते हैं– (A) प्रत्यक्ष या शुद्ध लोकतन्त्र (Direct or Pure Democracy); तथा (B) अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतन्त्र (Indirect or Representative Democracy)।

(A) प्रत्यक्ष लोकतन्त्र (Direct Democracy)

प्रत्यक्ष लोकतन्त्र के अन्तर्गत जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से राज्य की प्रभुत्व शक्ति का पूर्ण प्रयोग करती है। वह नीति संबंधी फैसले लेती है, कानून बनाती है तथा प्रशासनिक अधिकारियों को नियुक्त करती है। हर्नशा का कथन है, ''वास्तविक अर्थ में लोकतान्त्रिक शासन एक ऐसा शासन है जिसमें सम्पूर्ण जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से, बिना कार्यवाहकों या प्रतिनिधियों के, प्रभुसत्ता का प्रयोग करती है। हर्नशा का यह मत प्रत्यक्ष लोकतन्त्र पर पूरी तरह से लागू होता है। यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की प्रत्यक्ष लोकतान्त्रिक शासन–व्यवस्था प्राचीन यूनान के नगर–राज्यों में पायी जाती थी और वर्तमान में पूरी दुनिया में केवल स्विट्‌जरलैण्ड के पाँच कैण्टनों (प्रान्तों) में पायी जाती है। वस्तुतः प्रत्यक्ष लोकतान्त्रिक शासन की व्यवस्था केवल छोटे तथा कम जनसंख्या वाले राज्यों में ही संभव है, किन्तु वर्तमान काल में अधिकांश राज्य आकार एवं जनसंख्या की दृष्टि से बड़े राज्य हैं और इसलिए उनमें इस प्रणाली को लागू करना सम्भव नहीं है।

(B) अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतन्त्र (Indirect or Representative Democracy)–

आधुनिक काल में प्रायः सभी लोकतान्त्रिक राज्यों में अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतन्त्र ही पाया जाता है। इसके अन्तर्गत जनता स्वयं प्रत्यक्ष रूप से शासन की शक्ति का प्रयोग नहीं करती है, अपितु अपने प्रतिनिधियों के माध्यम से प्रभुत्व शक्ति का प्रयोग करती है। जे.एस.मिल के अनुसार, ''अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतन्त्र एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें सम्पूर्ण जनता या जनता की बहुसंख्या शासन की शक्ति या प्रयोग अपने उन प्रतिनिधियों के माध्यम से करती है, जिन्हें वह समय–समय पर चुनती है।' अन्य विद्वानों ने भी मिल की परिभाषा से मिलती–जुलती परिभाषाएं दी है। इस संबंध में कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

(अ) ''लोकतन्त्र शासन का वह रूप है, जिसमें राज्य की शासन–शक्ति, कानूनी तौर पर, किसी विशेष वर्ग या वर्गो में नहीं, अपितु सम्पूर्ण समाज के सदस्यों में निहित होती है।'

–लार्ड ब्राइस

(ब) ''लोकतन्त्र वह शासन व्यवस्था है, जिसमें राष्ट्र का अधिकांश भाग शासक होता है।'

–डायसी

(स) ''लोकतन्त्र वह शासन है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का (शासन कार्य में) भाग हो।'

–सीले

(द) ''लोकतन्त्र जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा शासन है।'

–अब्राहम लिंकन

विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गई अनेक परिभाषाओं के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रजातान्त्रिक शासन–प्रणाली कुछ विशिष्ट लक्षणों से युक्त है।

लोकतंत्र की प्रमुख विशेषताऐं :–

(1) जनता का शासन– शासन की एक प्रणाली के रूप में लोकतन्त्र सम्पूर्ण जनता का शासन होता है। 'जनता' का अर्थ सम्पूर्ण ''जन–समूह एवं प्रत्येक व्यक्ति'' से है। इस प्रकार यह किसी विशेष नस्ल भाषा, संस्कृति आदि से संबंधित वर्ग का शासन नहीं है।

(2) जनता द्वारा निर्मित शासन – लोकतन्त्र में सरकार का निर्माण जनता द्वारा किया जाता है। इसमें जनता अपने प्रतिनिधि चुनती है और वे प्रतिनिधि सरकार का निर्माण करते है।

(3) लोकतन्त्र शासन एक साधन है, साध्य नहीं – लोकतन्त्र में शासन को कभी भी साध्य नहीं माना जाता है, अपितु शासन को एक साधन माना जाता है। वास्तव में लोकतन्त्र में शासन निम्नलिखित साध्यों (लोकतान्त्रिक साध्यों) की प्राप्ति का साधन माना जाता है–(i) व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं गौरव की रक्षा, तथा (ii) सार्वजनिक हित की वृद्धि।

(4) जनता के प्रति उत्तरदायी शासन– लोकतन्त्र में शासन–प्रणाली 'लोक–प्रभुत्व' के सिद्धान्त को स्वीकारती है। अतः लोकतन्त्र में शासन अपने कार्यो के लिए जनता के प्रति उत्तदायी होता है। इसका अर्थ है कि यदि सरकार व्यक्ति की स्वतन्त्रता को छीनती है, जनमत का सम्मान नहीं करती अथवा सार्वजनिक हित में कार्य नहीं करती, तो जनता उसे बदल सकती है।

(5) लोकतन्त्र विकासशील शासन है– आधुनिक काल तक लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली विकास की कई अवस्थाओं से गुजरी है। प्रारम्भ में यह व्यक्तिवादी लोकतन्त्र था, जो बाद में उदारवादी लोकतन्त्र में बदल गया और वर्तमान में यह लोक कल्याणकारी राज्य की धारणा से सम्बन्धित हो गया है। इस विकास का परिणाम यह हुआ है कि जहाँ प्रारम्भ में लोकतन्त्र ने व्यक्ति की राजनीतिक स्वतन्त्रता व समानता तथा संवैधानिक शासन (विधि के शासन) पर ही बल दिया था, वहाँ अब यह सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में समानता व न्याय के सिद्धान्त को भी स्वीकार करने लगा है। इस प्रकार लोकतन्त्र के विकास ने उसके मूल्यात्मक स्तर में वृद्धि की है।

आधुनिक विश्व में प्रतिनिधि प्रजातन्त्र के दो प्रमुख रूप हैं– संसदात्मक शासन तथा अध्यक्षात्मक शासन। प्रथम का आदर्श उदाहरण ब्रिटेन की शासन–प्रणाली और द्वितीय का आदर्श उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका की शासन–प्रणाली है। स्विट्जरलैण्ड एक ऐसा देश है जिसमें संघीय स्तर पर संसदात्मक व अध्यक्षात्मक शासन–प्रणालियों के मिश्रित रूप को अपनाया गया है।

4. लोकतन्त्र का आलोचनात्मक परीक्षण (Critical Examination of Democracy)

एक ओर बर्क जैसे विद्वानों ने पूर्ण लोकतन्त्र को 'लज्जाहीन' धारणा माना है, तो दूसरी ओर लॉवेल जैसे विद्वानों ने इसे सर्वश्रेष्ठ शासन माना है। अतः निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए जरूरी है कि हम इसके गुण व दोषों का अध्ययन करें।

लोकतन्त्र के गुण (Merits of democracy)-

लोकतन्त्र के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

(1) सार्वजनिक हित में वृद्धि –

प्रजातान्त्रिक शासन का संचालन जनता के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। वे सार्वजनिक हित में वृद्धि करने के वायदे के आधार पर चुनाव जीतते हैं और उन्हें भविष्य में पुनः चुनाव लड़ना होता है। अतः ये जन–प्रतिनिधि सार्वजनिक हित में शासन करते हैं। लोकतन्त्र में शासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है।

(2) कार्य–कुशल शासन –

लोकतन्त्र को सबसे अधिक कार्यकुशल शासन–प्रणाली माना जाता है। लोकतन्त्र की कार्य–कुशलता के अनेक कारण हैं, जैसे–इस शासन में नीतियाँ जनमत के अनुसार बनायी जाती हैं। अतः इनको लागू करने में जन–सहयोग मिलता है। लोकतन्त्र शासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। अतः यह शासन की कार्य–कुशलता को बनाये रखने की कोशिश करता है।

(3) सार्वजनिक शिक्षा का साधन–

लोकतान्त्रिक शासन में जनता सार्वजनिक समस्याओं पर अपनी राय प्रकट करती है। सामान्य जनता जनमत निर्माण के साधनों तथा आम–चुनावों के माध्यम से विभिन्न समस्याओं पर अपना मत प्रकट करती है। सामान्य नागरिक अपने अधिकारों व कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक रहता है और बड़े हितों के लिए छोटे हितों का त्याग करना सीख जाता है। इस गुण के कारण ही गैटेल ने लोकतन्त्र को नागरिकता की शिक्षा प्रदान करने वाला स्कूल कहा है।

(4) नैतिक शिक्षा का साधन –

लोकतन्त्र शासन व्यक्ति को नैतिक शिक्षा भी प्रदान करता है। लॉवेल के अनुसार लोकतन्त्र व्यक्ति की नैतिकता व पवित्रता की भावना को मजबूत करता है। ब्राइस के अनुसार जब लोकतन्त्र में व्यक्ति को राजनीतिक अधिकार मिलते हैं, तो उसके व्यक्तित्व का विकास होता है और वह कर्त्तव्य–प्रिय हो जाता है। व्यवहार में हम देखते है कि लोकतन्त्र में व्यक्ति परिवार की संकीर्ण सीमाओं से निकलकर सावर्जनिक हित तक विस्तृत हो जाता है और वह साथी नागरिकों के साथ सहयोग, सहिष्णुता, उदारता व सहानुभूति का व्यवहार करने लगता है।

(5) देश–भक्ति की शिक्षा–

लोकतन्त्र राष्ट्र–प्रेम की भावना का भी विकास करता है। लोकतन्त्र में राज्य को किसी शासक वर्ग की सम्पत्ति नहीं माना जाता, अपितु इसे जनता की सम्पत्ति माना जाता है। इससे जनता में राष्ट्र के प्रति प्रेम व अपनत्व की भावना का विकास होता है। मिल के शब्दों में, ''लोकतन्त्र देशभक्ति की भावना को बढ़ाता है।''

(6) क्रान्ति से सुरक्षा –

क्रान्ति की आशंका ऐसे राज्यों में होती है जहाँ शासन की शक्ति किसी एक वर्ग के हाथों में होती है। लोकतन्त्र में स्थिति इससे एकदम विपरीत होती है। इसमें क्रान्ति की आवश्यकता नहीं होती है। लोकतन्त्र में शासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। लोकतन्त्र में सभी पक्षों को अपनी बात कहने तथा चुनाव लड़ने का हक होता है। साथ ही किसी विषय पर सरकार से असहमति होने पर अगले चुनाव में उसके विरूद्ध मत देने की स्वतंत्रता भी क्रान्ति की संभावना कम करती है।

(7) समानता और स्वतन्त्रता पर आधारित शासन–

लोकतन्त्र व्यक्ति की समता व स्वतन्त्रता की धारणा को स्वीकार करता है। यह व्यक्तियों में जाति, धर्म, भाषा, लिंग, आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करता है, अपितु सभी व्यक्तियों के लिए विधि की समानता तथा विधि के समान संरक्षण में विश्वास करता है।

(8) स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना–

लोकतन्त्र में स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना की जाती है, जो व्यक्ति को कार्यपालिका व व्यवस्थापिका के अत्याचार से बचाती है और व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा करती है। ऐसी न्यायपालिका व्यक्ति को शासन की अनुचित नीतियों का विरोध करने का साहस देती है और शासन से उसकी संवैधानिक मर्यादाओं का पालन कराती है।

(9) कला, साहित्य, संस्कृति व विज्ञान की प्रगति में सहायक–

लोकतन्त्र कला, साहित्य, संस्कृति व विज्ञान पर किसी प्रकार का अनुचित नियंत्रण नहीं करता है, अपितु इनका विकास

चाहता है। लोकतन्त्र की तुलना में अधिनायकवाद में इन सभी क्षेत्रों पर नियंत्रण होता है, क्योंकि वहाँ विचार एवं कर्म की स्वतन्त्रता नहीं होती है। अतः अधिनायकतन्त्रों में कला, साहित्य व संस्कृति के क्षेत्र में पर्याप्त विकास नहीं होता है और विज्ञान के विकास में भी बाधा आती है।

(10) संविधानवाद में आस्था—

लोकतन्त्र संविधानवाद में आस्था रखता है। इसका अर्थ है कि लोकतन्त्र व्यक्ति के स्वेच्छाचारी शासन के स्थान पर विधि के शासन में विश्वास करता है और वह ऐसी विधि को स्वीकार करता है जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता को स्वीकारता हो। इसका सरल अर्थ है कि लोकतन्त्र निरंकुश शासन की जगह 'सीमित शासन' में विश्वास रखता है और शक्ति के विकेन्द्रीकरण को स्वीकार करता है।

(11) शक्तिशाली शासन व्यवस्था—

लोकतन्त्र व्यक्ति में राष्ट्र—प्रेम पैदा करता है और यह जन—सहमति पर आधारित शासन है, अतः जब भी राष्ट्र पर संकट आता है तो सम्पूर्ण जनता एक व्यक्ति के रूप में संकट के विरुद्ध खड़ी हो जाती है।

(12) विश्व—शान्ति का समर्थक—

राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र तथा अधिनायकतन्त्र का इतिहास बताता है कि इन शासन—प्रणालियों ने समय—समय पर विश्व की शान्ति को खतरा उत्पन्न किया है। इसका कारण यह है कि ये शासन प्रणालियाँ सैनिकवाद, कठोर विदेश नीति तथा विस्तारवाद में विश्वास रखती हैं। किन्तु लोकतन्त्र विश्व—शान्ति व सहयोग में आस्था रखता है। इसका कारण यह है कि लोकतन्त्र सैनिकवाद की जगह शान्तिपूर्ण सह—अस्तित्व में विश्वास रखता है और राष्ट्रों के बीच विवादों को पारस्परिक वार्ता एवं समझौतों द्वारा तथा अन्तरराष्ट्रीय कानून द्वारा सुलझाना चाहता है।

लोकतन्त्र के दोष (Demerits of democracy)—

लोकतन्त्र में निम्नलिखित दोष हैं, जिन्हें हम उसके विपक्ष में तर्क भी कह सकते हैं—

(1) लोकतन्त्र की व्यक्ति सम्बन्धी धारणा भ्रमपूर्ण —

लोकतन्त्र व्यक्ति को बुद्धि व विवेक सम्पन्न मानता है। अतः उसे मताधिकार देता है और मानता है कि वह राजनीतिक मामलों में परिपक्व निर्णय देने में समर्थ होगा, किन्तु आलोचकों का मत है कि व्यक्ति मूलतः ऐसा अबौद्धिक प्राणी है, जो अपने मूल संवेगों व आवेगों से चालित होता है और इसलिए व्यक्तियों को जब मताधिकार दे दिया जाता है तो हमें व्यवहार में लोकतन्त्र की जगह भीड़तन्त्र मिलता है।

(2) बुद्धिजीवी वर्ग की उदासीनता —

लोकतन्त्र में बुद्धिजीवी वर्ग की उदासीनता होती है। इस व्यवस्था में यह माना जाता है कि गुणों की अपेक्षा संख्या को अधिक महत्व दिया जाता है। इस कारण से समाज में बुद्धिजीवी वर्ग इस व्यवस्था में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेते है।

(3) शैक्षणिक महत्त्व का दावा भ्रमपूर्ण —

लोकतन्त्र के बारे में यह दावा पूरी तरह से भ्रमपूर्ण है कि यह व्यक्ति को नागरिक शिक्षा, नैतिक शिक्षा तथा राष्ट्र—प्रेम की शिक्षा देता है। वास्तविक स्थिति इससे कदम भिन्न है। लोकतन्त्र में राजनीतिक दल प्रत्येक राष्ट्रीय समस्या पर अपने स्वार्थ की दृष्टि से विचार करते हैं और उसे ही राष्ट्रीय हित बताकर प्रचार करते हैं। वे एक—दूसरे पर आरोप—प्रत्यारोप लगाते हैं और जनता के विभिन्न वर्गो को अपने प्रभाव में लाने के लिए उसकी भावना को भड़काते रहते है।

(4) लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता व समानता भ्रमपूर्ण है—

लोकतन्त्र व्यक्तियों को राजनीतिक स्वतन्त्रता व समानता प्रदान करता है, किन्तु यह व्यक्तियों को आर्थिक स्वतन्त्रता व समानता प्रदान नहीं करता है। आर्थिक स्वतन्त्रता व समानता के अभाव में व्यक्ति की राजनीतिक स्वतन्त्रता व समानता भी अर्थहीन हो जाती है। लोकतन्त्र में चुनावों में धनिक खड़े होते हैं और वे अपने धन की शक्ति व प्रभाव के द्वारा चुने जाते हैं। जब व्यवस्थापिका के अधिकांश व्यक्ति धनवान होते हैं तो वे कानून भी ऐसे ही बनाते हैं जो धनिक वर्ग के हित में होते है। इस प्रकार आर्थिक असमानता के कारण लोकतन्त्र में गरीब वर्ग की राजनीतिक स्वतन्त्रता व समानता भी लगभग अर्थहीन हो जाती है।

(5) राजनीतिक दलों का दुष्प्रभाव —

लोकतन्त्र के संचालन के लिए राजनीतिक दल परम आवश्यक माने जाते हैं, किन्तु राजनीतिक दल—प्रणाली में अनेक दोष भी होते हैं और इनके कारण लोकतन्त्र में विकार आता है। सिद्धान्त रूप में सभी राजनीतिक दलों का निर्माण राष्ट्रीय हित में होता है और वे जनता के उत्थान के लिए विभिन्न सामाजिक व आर्थिक नीतियों व कार्यक्रमों का प्रचार करते हैं, किन्तु व्यवहार में सभी राजनीतिक दल राष्ट्र—भक्ति की जगह दल—भक्ति को महत्त्व देते हैं।

(6) अनुत्तरदायी शासन—प्रणाली —

सिद्धान्त रूप में लोकतन्त्र को जनता के प्रति उत्तरदायी शासन बताया जाता है, किन्तु व्यवहार रूप में लोकतन्त्र अनुत्तरदायी दिखायी पड़ता है। लोकतन्त्र शासन में असफलताओं की जिम्मेदारी कोई भी पक्ष अपने ऊपर नहीं लेता है। जब भी कोई बड़ी असफलता मिलती है तो सरकार विरोधी दल के आन्दोलनों एवं अड़ँगा डालने की नीति को असफलता के लिए उत्तरदायी

बताती है, किन्तु विरोधी दल असफलताओं के लिए स्वयं सरकार की नीतियों को दोषी बताते हैं।

(7) सार्वजनिक धन व समय का अपव्यय –

लोकतन्त्र में नीतियों के निर्धारण में तथा कानून के निर्माण में अत्यधिक धन व्यय होता है और समय की भी बर्बादी होती है। सभी कार्य विभिन्न समितियों के द्वारा तथा व्यवस्थापिका की लम्बी–चौड़ी बहस द्वारा किये जाते हैं। लोकतन्त्र की यह प्रक्रिया समय व धन की दृष्टि से अत्यधिक खर्चीली होती है। इसी प्रकार आम चुनावों में भी राष्ट्रीय धन व समय की बहुत हानि होती है। गरीब देशों के लिए लोकतन्त्र एक ओर तो धन की दृष्टि से बहुत खर्चीली प्रणाली है और दूसरी ओर इसमें विकास की गति भी बहुत धीमी है।

(8) उदासीन मतदाता –

लोकतन्त्र जनता का शासन कहलाता है, किन्तु लोकतन्त्र में होने वाले चुनावों में मतदाता पर्याप्त रुचि नहीं रखते हैं। राजनीतिक दलों तथा उनके उम्मीदवारों के अत्यधिक प्रयत्नों के बावजूद मतदान में 50 से 60 प्रतिशत के बीच में मतदाता भाग लेते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि लोकतन्त्र के दोषों के कारण स्वयं जनता इस शासन–प्रणाली को अपना नहीं मानती है। इसके अलावा जब सभी मतदाता मतदान नहीं करते हैं, तो प्रायः कम योग्य तथा अवसरवादी प्रकृति के प्रतिनिधि भी चुन लिए जाते हैं।

(9) संकटकाल की दृष्टि से कमजोर शासन –

युद्ध अथवा अन्य प्रकार के संकटों की स्थिति में लोकतन्त्र शासन कमजोर सिद्ध होता है, क्योंकि इसमें सत्ता विकेन्द्रित होती है। इस प्रणाली में शीघ्र व गुप्त निर्णय संभव नहीं होते हैं। द्वितीय विश्व–युद्ध में ब्रिटेन के अलावा सभी यूरोपीय लोकतान्त्रिक देश नाजी जर्मनी के सामने और द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के लोकतान्त्रिक राज्य साम्यवादी सोवियत संघ के सामने कमजोर सिद्ध हुए।

(10) लोकतन्त्र विश्व–शान्ति का समर्थक नहीं –

साम्यवादी आलोचकों का मत है कि लोकतान्त्रिक राज्य पूँजीवादी राज्य होते हैं। पूँजीवाद युद्ध एवं साम्राज्यवाद को जन्म देता है, अतः लोकतान्त्रिक राज्यों को विश्व–शान्ति का समर्थक नहीं माना जा सकता है। ब्रिटेन, फ्रांस आदि यूरोप के लोकतान्त्रिक राज्यों ने युद्ध एवं साम्राज्यवाद की नीति को अपनाया था। यद्यपि वर्तमान में यूरोप के समृद्ध लोकतान्त्रिक राज्य युद्ध एवं राजनीतिक साम्राज्यवाद के विरोधी दीख पड़ रहे हैं, किन्तु उनकी नीतियाँ एक नये प्रकार के आर्थिक साम्राज्यवाद को जन्म दे रही हैं, जिसे हम नव–उपनिवेशवाद कहते हैं। वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं की मदद से अफ्रीका व एशिया की अर्थव्यवस्था को अपने हित में प्रभावित कर रहे है। साम्यवादी विचारकों का मत है कि आधुनिक काल में भी लोकतन्त्र और पूँजीवाद की साँठ–गाँठ है और यह विश्व–शान्ति के लिए खतरा है।

5. लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ (Essential Conditions for the Success of Democracy)

कोई भी शासन–प्रणाली विशिष्ट परिस्थितियों में ही सफलापूर्वक कार्य कर सकती है और प्रतिकूल परिस्थितियाँ होने पर उसका पतन हो जाता है। यह बात लोकतान्त्रिक शासन–प्रणाली के बारे में भी सत्य है। प्रथम विश्व–युद्ध के बाद यूरोप के अनेक राज्यों में लोकतन्त्र की स्थापना की गयी, किन्तु अनुकूल परिस्थितियों के अभाव में लोकतान्त्रिक शासन–प्रणाली असफल हो गयी और इसका स्थान अधिनायकवाद ने ले लिया। वर्तमान एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमरीका महाद्वीपों में भी अनेक देशों में लोकतन्त्र–शासन का पतन हुआ है, क्योंकि इन देशों में लोकतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तों या परिस्थितियों का अभाव रहा है।

विद्वानों का मत है कि निम्नलिखित परिस्थितियाँ लोकतन्त्र के सफल संचालन में सहायक हो सकती हैं–

(1) शान्ति तथा व्यवस्था –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए जरूरी है कि देश में आन्तरिक व्यवस्था सामान्य हो और युद्ध या बाहरी आक्रमण का भय नहीं हो। ऐसी स्थिति में सत्ता का विकेन्द्रीकरण बना रहता है और व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग करते हैं। किन्तु जब देश में राजनीतिक स्थिरता व व्यवस्था को चुनौती देने वाले आन्दोलन चलते हैं अथवा बाहरी आक्रमण होता है, तो सरकार राष्ट्र की अखण्डता तथा सुरक्षा के लिए सत्ता का केन्द्रीयकरण करती है और व्यक्ति की स्वतन्त्रता तक पर पाबन्दियाँ लगाती है। इस स्थिति में लोकतन्त्र दम तोड़ने लगता है और अधिनायकतन्त्र की स्थापना का मार्ग खुल जाता है। अतः लोकतन्त्र में शांति व्यवस्था आवश्यक है।

(2) सुदृढ़ राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए यह जरूरी है कि राष्ट्र की अर्थ–व्यवस्था पर्याप्त मजबूत हो। यदि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था औद्योगिक संकट से गुजर रही होती है, तो लोकतांत्रिक व्यवस्था लड़खड़ा जाती है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी व इटली में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लड़खड़ाने के बाद ही इन देशों में लोकतन्त्र का अन्त हुआ और तानाशाही की स्थापना हुयी। इसी

प्रकार द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप में आर्थिक अव्यवस्था के कारण वहाँ के देशों में लोकतन्त्र का अन्त हुआ और साम्यवादी शासन की स्थापना हुयी। आधुनिक काल में भी लैटिन अमरीका के राज्यों में लोकतन्त्र की असफलता का एक बड़ा कारण आर्थिक अव्यवस्था है। अनेक अफ्रो–एशियाई राज्य भी ऐसे ही संकट से गुजर रहे हैं।

(3) आर्थिक समानता की स्थापना –

लोकतन्त्र के सफल संचालन के लिए केवल इतना ही जरूरी नहीं है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था शक्तिशाली हो, अपितु यह भी जरूरी है कि राज्य में यथासंभव आर्थिक समानता हो अर्थात् गरीबी व अमीरी के बीच चौड़ी खाई न हो। यह तब ही सम्भव है जब देश में बड़ी मात्रा में मध्यवर्ग मौजूद हो। इस स्थिति में ही लोकतन्त्र को कमजोर करने वाले वर्गसंघर्ष से बचा जा सकता है।

(4) सामाजिक न्याय की स्थापना –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए जरूरी है कि व्यक्तियों के बीच धर्म, जाति, भाषा, रंग, नस्ल, लिंग, जन्म आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाये। सभी व्यक्ति कानून के सामने समान माने जायें और उन्हें न्यायालय समान कानूनी संरक्षण दें। इस प्रकार जब समाज में सभी व्यक्तियों को समान स्थिति प्राप्त होती है, तो उनके बीच भावनात्मक एकता भी स्थापित होती है और सामाजिक लोकतन्त्र की स्थापना होती है।

(5) शिक्षित व जागरूक जनता –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए जनता का शिक्षित एवं जागरूक होना आवश्यक है। शिक्षित जनता ही लोकतन्त्र की समस्याओं को तथा इसकी प्रक्रिया को समझने में समर्थ होती है और स्वस्थ जनमत का निर्माण कर सकती है। इसके अलावा जब जनता जागरूक होती है तो सरकार की लोकतन्त्रविरोधी नीतियों एवं कार्यो का विरोध करने में भी समर्थ होती है।

(6) जनमत का निर्माण –

लोकतन्त्र की सफलता के लिए जनमतनिर्माण के साधनों की स्वतन्त्रता भी आवश्यक है। इसका अर्थ है कि प्रेस, साहित्य, रेडियो, सिनेमा, दूरदर्शन आदि पर सरकारी नियन्त्रण नहीं होना चाहिए। जब जनमत निर्माण के साधन स्वतन्त्र होते हैं तब नागरिक संगठित रूप से और शान्तिपूर्ण ढंग से सरकार की लोकतन्त्र विरोधी नीतियों व कार्यो की आलोचना करने में सफल होते हैं, जिसमें लोकतांत्रिक मर्यादा बनी रहती है। इस स्थिति में लोकतन्त्र सफलतापूर्वक कार्य करता है।

(7) नागरिक, नैतिक व राष्ट्रीय चरित्र –

जब किसी समाज में नागरिक, नैतिक व राष्ट्रीय चरित्र श्रेष्ठ होता है, तो वहाँ लोकतन्त्र की सफलता की बहुत उम्मीद होती है। ऐसे समाज में व्यक्ति अपने अधिकारों व कर्त्तव्यों का उचित प्रयोग करते हैं। वे सार्वजनिक समस्याओं पर लोकहित की दृष्टि से विचार करते हैं और साथी नागरिकों के प्रति सहिष्णुता, उदारता, सहानुभूति, सेवा, प्रेम, आदि का व्यवहार करते हैं और अपने राष्ट्र से प्रेम करते हैं। वस्तुतः लोकतन्त्र अन्तिम दृष्टि से जनता की शक्ति पर निर्भर करता है और जब जनता का नागरिक, नैतिक व राष्ट्रीय चरित्र सुदृढ़ होता है तो लोकतन्त्र भी सफल होता है।

(8) सत्ता का विकेन्द्रीकरण तथा स्थानीय स्वशासन–

अधिनायकतन्त्र का आधार है सत्ता का केन्द्रीकरण और लोकतन्त्र का आधार है सत्ता का विकेन्द्रीकरण। सत्ता का विकेन्द्रीकरण होने पर ही जनता के विभिन्न वर्ग शासन के कार्यो में भाग लेते हैं और लोकतन्त्र को सफल बनाते हैं। लोकतन्त्र में विकेन्द्रीकरण का एक अच्छा रूप स्थानीय स्वशासन है। स्थानीय स्वशासन के माध्यम से ही सामान्य व्यक्ति शासन–कार्यो में रुचिपूर्वक भाग लेता है और उसे सही मायने में नागरिकता की शिक्षा प्राप्त होती है।

(9) नागरिक स्वतन्त्रताएं–

लोकतन्त्र 'सीमित शासन' के सिद्धान्त को मानता है जिसका अर्थ है कि संविधान द्वारा नागरिकों को मौलिक स्वतन्त्रताएं प्रदान की जानी चाहिए और इन स्वतन्त्रताओं की रक्षा का प्रबन्ध भी किया जाना चाहिए। नागरिक स्वतन्त्रताओं का अर्थ है कि नागरिकों को विचार प्रकट करने की, संगठन बनाने की, सभा करने की तथा शान्तिपूर्ण आन्दोलन करने की स्वतन्त्रतायें प्राप्त होनी चाहिए। मौलिक स्वतन्त्रताओं का निष्कर्ष है कि नागरिकों को सरकार की उन सब नीतियों एवं कार्यो की शान्तिपूर्ण आलोचना करने का अधिकार होना चाहिए, जिन्हें वे लोकतन्त्र एवं सामान्य हित के विरुद्ध समझते हैं। यह स्पष्ट ही है कि नागरिक मौलिक स्वतन्त्रताओं के प्रयोग के लिए जनमत–निर्माण के साधनों का स्वतन्त्र होना भी जरूरी है।

(10) लिखित संविधान तथा लोकतान्त्रिक परम्पराएं–

लिखित संविधान का अर्थ है कि संविधान की भाषा बहुत स्पष्ट होनी चाहिए, ताकि उसकी व्याख्या को लेकर विवाद एवं भ्रम उत्पन्न नहीं हों। इसके अलावा संविधान में संशोधन की पद्धति कठोर होनी चाहिए ताकि कोई राजनीतिक दल अपने बहुमत का लाभ उठाकर लोकतन्त्र को अधिनायकतन्त्र में नहीं बदल ले, जैसा कि जर्मनी में हिटलर ने किया था। लोकतांत्रिक परम्पराओं से आशय आचरण के उन नियमों व व्यवस्थाओं से है, जिनका वर्णन संविधान या कहीं और भले ही लिखित रुप में नहीं होता, पर वह लोकतांत्रिक पद्वति व प्रक्रिया को आगे बढ़ाने वाली

होती है और जिन पर लगभग सर्वदलीय सहमति बन जाती है।

(11) स्वतन्त्र व शक्तिशाली न्यायपालिका –

लोकतन्त्र का आधार संविधानवाद है, जिसका अर्थ है कि लोकतन्त्र में सरकार को निरंकुश सत्ता प्राप्त नहीं होती है, अपितु उसे अनिवार्य रूप से संवैधानिक मर्यादाओं व सीमाओं को स्वीकारना होता है। लोकतन्त्र की सफलता के लिए एक शक्तिशाली व स्वतन्त्र न्यायपालिका की स्थापना जरूरी होती है, क्योंकि ऐसी न्यायपालिका ही कार्यपालिका को कानून का उल्लंघन करने व अत्याचारी बनने से रोकती है और व्यवस्थापिका द्वारा बनाये गये असंवैधानिक कानूनों को अवैध घोषित करती है। ऐसी न्यायपालिका नागरिकों की स्वतन्त्रता की भी रक्षा करती है।

(12) योग्य व निष्पक्ष कर्मचारी तन्त्र –

लोकतन्त्र में जन–प्रतिनिधियों द्वारा बनायी गयी नीतियों को कर्मचारी तन्त्र ही लागू करता है। लोकतन्त्र की सफलता के लिए यह जरूरी है कि कर्मचारी तन्त्र न केवल प्रशासनिक दृष्टि से अपने कार्य में कुशल होना चाहिए, अपितु उसे आम जनता के लिए सेवाभावी भी होना चाहिए। उसे सदैव दलगत राजनीति में तटस्थ एवं निष्पक्ष रहना चाहिए।

(13) स्वस्थ व सुसंठित दलीय व्यवस्था –

लोकतन्त्र व्यवहार में दलीय शासन–प्रणाली है, अतः लोकतन्त्र की सफलता राजनीतिक दलों की नीतियों, कार्यक्रमों एवं निष्ठा पर निर्भर करती है। लोकतन्त्र की सफलता के लिए जरूरी है कि राजनीतिक दलों का निर्माण स्वस्थ आधार पर हो। उनका संगठन क्षेत्रीय, भाषायी अथवा साम्प्रदायिक आधार पर नहीं होना चाहिए, अपितु राष्ट्रीय आधार पर होना चाहिए। इसका अर्थ है कि राजनीतिक दलों का निर्माण राष्ट्रीय स्तर की आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं को लेकर होना चाहिए। इसके अलावा राजनीतिक दलों के संचालन में आन्तरिक लोकतंत्र होना चाहिए। समय–समय पर दलों में आन्तरिक चुनाव होने चाहिए। उन्हें अनुशासनहीन व दल–बदलुओं को अपना सदस्य नहीं बनाना चाहिए।

(14) योग्य तथा निष्ठावान राजनेता– लोकतन्त्र की सफलता के लिए योग्य, बुद्धिमान तथा लोकतन्त्र में निष्ठा वाले राजनीतिज्ञों का होना बहुत जरूरी है। ऐसे राजनीतिज्ञ ही राष्ट्रीय समस्याओं का शान्तिपूर्ण एवं लोकतान्त्रिक हल ढूंढने में समर्थ होते हैं। यदि राजनीतिज्ञ भ्रष्ट, अवसरवादी, झूठे, सत्ता के लोभी, समर्थकों को अनुचित लाभ पहुँचाने वाले तथा कुत्सित भावनाओं को भड़काने वाले होते हैं तो वे लोकतन्त्र को भीड़तन्त्र में बदल देते हैं और देश के सामने नेतृत्व का संकट पैदा हो जाता है।

(15) सार्वजनिक हित की राष्ट्रीय योजनाएं–

विकासशील देशों में लोकतन्त्र की सफलता के लिए जरूरी है कि शासन द्वारा ऐसी राष्ट्रीय योजनायें बनायी जायें जो एक ओर कृषि व उद्योगों के सन्तुलित विकास में सहायक हों, राष्ट्रीय आय की वृद्धि करती हों तथा समाज के श्रमिक वर्ग व कमजोर वर्ग के जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक हों।

(16) आधारभूत मामलों में राष्ट्रीय सहमति–

लोकतन्त्र की सफलता के लिए यह अत्यन्त जरूरी है कि आधारभूत मामलों पर समाज के बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक वर्गो तथा राजनीतिक दलों में सहमति हो।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. लोकतन्त्र शब्द का अर्थ डेमोस+क्रेटिया (Demos + Kratia) = 'जनता की शक्ति' अर्थात् 'जनता का शासन'। आधुनिक युग में लोकतन्त्र उदारवादी बौद्धिक आन्दोलन की देन है। वर्तमान में उदारवादी लोकतन्त्र अत्यन्त लोकप्रिय है और इसके व्यापक अर्थ को निम्नलिखित रूप में प्रकट किया जा सकता है।–

   (1) यह निर्णय लेने की एक विधि है,

   (2) यह निर्णय लेने के सिद्धान्तों का एक समूह है, तथा

   (3) यह आदर्शात्मक मूल्यों से सम्बन्धित अवधारणा है।

2. "लोकतन्त्र एक ऐसा शब्द है जिसके अनेक अर्थ हैं।" – बर्न्स।

3. लोकतन्त्र के चार प्रमुख रूप हैं–

   (अ) राजनीतिक लोकतन्त्र– राजनीतिक लोकतन्त्र के दो रूप हैं– (1) राज्य के रूप में लोकतन्त्र

   (2) शासन के रूप में लोकतन्त्र।

   लोकतान्त्रिक राज्य की अवधारणा प्रभुसत्ता का निवास जनता में मानती है।

4. लोकतान्त्रिक राज्य का व्यावहारिक रूप लोकतान्त्रिक शासन है। लोकतान्त्रिक शासन के दो प्रकार हैं–

   (1) प्रत्यक्ष लोकतन्त्र

   (2) अप्रत्यक्ष (प्रतिनिधि) लोकतन्त्र।

   अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र के दो रूप प्रचलित हैं :–

   (1) संसदीय लोकतन्त्र

   (2) अध्यक्षात्मक लोकतन्त्र।

5. राजनीतिक लोकतन्त्र की आधारभूत विशेषतायें हैं–

   (1) यह उदारवादी संविधान में विश्वास करता है,

   (2) यह लोक–प्रभुत्व में विश्वास करता है,

   (3) इसका सैद्धान्तिक पक्ष है लोकतान्त्रिक राज्य और व्यावहारिक पक्ष है लोकतान्त्रिक शासन,

(4) यह साधन है, साध्य नहीं।

(5) यह विकासशील अवधारणा है।

6. (ब) सामाजिक लोकतन्त्र की विशेषतायें है–

(1) सामाजिक समानता,

(2) सभी को सामाजिक प्रगति के समान अवसर।

(3) राजनीतिक लोकतन्त्र का अनुपूरक होना।

7. (स) आर्थिक लोकतन्त्र– इसके तीन उप–प्रकार एवं अर्थ हैं–

(1) व्यक्तिवादी आर्थिक लोकतन्त्र जो शुद्ध पूंजीवादी लोकतन्त्र होता है,

(2) मार्क्सवादी आर्थिक लोकतन्त्र, जो पूंजीवादी लोकतन्त्र से एकदम विपरीत आर्थिक समतावादी तन्त्र है।

(3) उदारवादी आर्थिक लोकतन्त्र, जो लोक कल्याणकारी राज्य की धारणा में विश्वास करता है।

8. (द) नैतिक लोकतन्त्र– इसके प्रमुख लक्षण एवं विशेषताएं हैं–

(1) नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों पर बल,

(2) व्यक्ति की गरिमा में विश्वास,

(3) स्वतन्त्रता, समानता एवं भाई–चारे की भावना पर बल,

(4) अपनी प्रकृति से अन्तर्राष्ट्रवादी विचारधारा में विश्वास।

अभ्यास प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. 'Democracy' शब्द ग्रीक भाषा के किन शब्दों के संयोग से बना है और उसका प्रचलित व स्वीकृत अर्थ क्या है ?
2. लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के दो प्रमुख भेद कौन से हैं?
3. उदारवादी प्रतिनिधि (अप्रत्यक्ष) लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के दो प्रमुख प्रकार कौन से हैं?
4. लोकतन्त्र के एक रूप 'सामाजिक लोकतन्त्र' का क्या अर्थ है ?
5. लोकतन्त्र के एक रूप 'नैतिक लोकतन्त्र' से आप क्या समझते हैं ?
6. लोकतन्त्र के बहुलवादी सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण की आलोचना के दो तर्क दीजिए।
7. लोकतन्त्र के विशिष्ट (अभिजन) वर्गीय सिद्धान्त के लोकतान्त्रिक होने के बारे में क्यों संदेह किया जाता है ?
8. लोकतान्त्रिक शासन के किन्हीं तीन गुणों को इंगित कीजिए।
9. लोकतान्त्रिक शासन के किन्हीं तीन अवगुणों को इंगित कीजिए।
10. लोकतन्त्र के सफल संचालन के लिए आवश्यक तीन शर्तो (परिस्थितियों) का उल्लेख कीजिए।
11. भारत में लोकतन्त्र के संचालन के मार्ग की तीन प्रमुख बाधाओं को इंगित कीजिए।
12. ऐसे तीन तथ्यात्मक तर्क दीजिए जो भारत के लोकतन्त्र के उज्जवल भविष्य को प्रकट करते हों।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. लोकतन्त्र से आप क्या समझते हैं ? इसके विभिन्न रूपों का वर्णन कीजिए।
2. 'लोकतन्त्र को शासन का एक रूप, सामाजिक संगठन का एक सिद्धान्त तथा जीवन की एक पद्धति माना जाता है।' क्यों?
3. लोकतान्त्रिक शासन से आप क्या समझते है ? इसका आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
4. प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. अप्रत्यक्ष लोकतन्त्र के गुण–दोषों की विवेचना कीजिए।
6. लोकतन्त्र के कुल कितने प्रमुख सिद्धान्त एवं दृष्टिकोण हैं? इनमें से लोकतन्त्र के उदारवादी, मार्क्सवादी एवं समाजवादी सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
7. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये–

(अ) उदारवादी प्रतिनिधि लोकतन्त्र के प्रमुख लक्षण।

(ब) लोकतन्त्र अयोग्यता का शासन है।

(स) लोकतन्त्र शासन का सबसे अच्छा रूप है, क्योंकि व्यक्ति को इससे श्रेष्ठ शासन का अभी भी ज्ञान नहीं है।

(द) लोकतन्त्र के दोषों के अन्त के लिए प्रमुख सुझाव दीजिए।